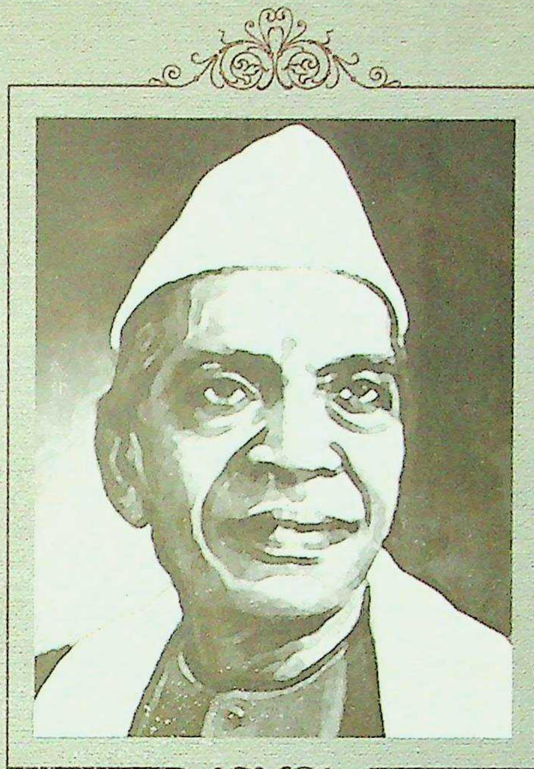


मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली

संपादक
कृष्णदत्त पालीवाल

" 'भारत भारती' ने उन दिनों विदेशी शासन से मुक्ति पाने की अपूर्व प्रेरणा दी। समूचे हिन्दी भाषी प्रदेश को उद्‌बुद्ध और प्रेरित करने में इस पुस्तक ने प्रशसंनीय शक्ति का परिचय दिया। तब से गुप्त जी को लोकचित्त में राष्ट्र-प्रीति की भावना जगानेवाले सबसे शक्तिशाली कवि के रूप में हिन्दी-जगत् देखता आया है। वे सच्चे अर्थों में राष्ट्रकवि हैं।"

—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी,

'हिन्दी साहित्य : उसका उद्‌भव और विकास'



मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली

खण्ड-5

खण्ड-1

❑ रंग में भंग ❑ जयद्रथ-वध ❑ पद्य-प्रबन्ध ❑ भारत-भारती

खण्ड-2

❑ पत्रावली ❑ वैतालिक ❑ किसान ❑ पंचवटी ❑ हिन्दू

खण्ड-3

❑ स्वदेश-संगीत ❑ सैरन्ध्री ❑ वकसंहार ❑ शक्ति ❑ वन वैभव ❑ गुरुकुल

खण्ड-4

❑ विकट भट ❑ झंकार ❑ साकेत

खण्ड-5

❑ यशोधरा ❑ द्वापर

खण्ड-6

❑ सिद्धराज ❑ नहुष ❑ कुणाल-गीत ❑ अर्जन औरविसर्जन ❑ विश्व-वेदना ❑ काबा और कर्बला ❑ अजित

खण्ड-7

❑ हिडिम्बा ❑ प्रदक्षिणा ❑ युद्ध ❑ अंजलि और अर्घ्य ❑ पृथिवीपुत्र : दिवोदास, जयिनी, पृथिवीपुत्र ❑ जय भारत

खण्ड-8

❑ राजा-प्रजा ❑ विष्णुप्रिया ❑ रत्नावली ❑ उच्छ्वास

खण्ड-9

❑ अनघ ❑ चन्द्रहास ❑ तिलोत्तमा ❑ निष्क्रिय प्रतिरोध ❑ विसर्ज्जन ❑ स्वप्न वासदत्ता ❑ प्रतिमा ❑ अभिषेक ❑ अविमारक

खण्ड-10

❑ मेघनाद-वध ❑ वीरांगना ❑ विरहिणी व्रजांगना

खण्ड-11

❑ पलासी का युद्ध ❑ वृत्र-संहार ❑ रुबाइयात उमर खय्याम

खण्ड-12

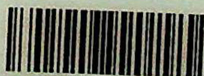
❑ भूमि-भाग ❑ शकुन्तला ❑ स्वस्ति और संकेत ❑ त्रिपथगा ❑ मुंशी अजमेरी

मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली

खण्ड-5

सम्पादक

डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल





वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
फोन : 011-23273167, 23275710
फैक्स : 011-23275710
e-mail : vaniprakashan@gmail.com
website : www.vaniprakashan.com

वाणी प्रकाशन का लोगो
विख्यात चित्रकार मक़बूल फ़िदा हुसेन
की कूची से

ISBN : 978-81-8143-759-4

वितरक :



वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

प्रकाशक
साहित्य सदन
184, तलैया झाँसी
संस्करण : 2008

आवरण : वाणी प्रकाशन
क्वालिटी ऑफसेट, शाहदरा, दिल्ली-110032
द्वारा मुद्रित

बारह खण्डों का मूल्य
मूल्य : 9000/-

MAITHILISHARAN GUPT GRANTHAWALI-5
Edited by : Dr. Krishandatt Paliwal

Hindi Premi

निवेदन

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के समग्र साहित्य को एकसूत्र में अनुस्यूत करके हिन्दी के सहृदय-समाज को अर्पित करते हुए अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। गुप्त जी लगभग साठ वर्ष तक साहित्य-साधना में निरन्तर समर्पित रहे। वे हिन्दी भाषियों के साथ अहिन्दी भाषियों के सर्वाधिक प्रिय रचनाकार हैं। आज का पाठक उनकी समग्र कृतियों को पढ़ने का अरमान रखता है। मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली की प्रकाशन-योजना पाठक के उसी अरमान को पूरा करने की ओर एक कदम है।

राष्ट्रकवि की गरिमा से दीप्त-प्रदीप्त मैथिलीशरण गुप्त का कृती व्यक्तित्व और उनकी असीम सर्जनात्मक क्षमता किसी भी सुमनस को मोहने और अभिभूत करने के लिए पर्याप्त है। उनके सर्जन में हमारी परम्परा के पुरखे बोलते हैं। आधुनिक भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन, नवजागरण, सत्याग्रह-युग और नेहरू-युग का विचार-मन्थन गुप्त जी की रचना-दृष्टि के उत्तमांश को सामने लाता है। यह रचना-दृष्टि अपनी व्यापकता और गहराई में समाज के आर-पार देखने की क्षमता रखती थी। इतिहास-पुराण, मिथक, प्रतीक, रूपक उनकी लेखनी का पारस स्पर्श पाकर अपनी जड़ता खो बैठा और साहित्य कालजयी या क्लासिक शक्ति धारण कर लेता है। सच बात तो यह है उनके वैष्णव संस्कारों, विचारों, अभिप्रायों से काल का डमरू ऐसे बजा है कि उसमें से प्रेरणा का नाद फूट रहा है।

मैथिलीशरण गुप्त की वाचिक परम्परा से प्राप्त प्रतिभा ने हिन्दी के साथ भारतीय साहित्य के एक विशाल लोक-चित्त को प्रेरित एवं प्रभावित किया है। उन्होंने स्वाध्याय से संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला, मराठी के साहित्य को रमकर समझा था। वे अंग्रेजी नहीं जानते थे और अंग्रेजी न जानना उनकी देसी प्रतिभा के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उन देसी प्रतिभा की ही यह विजय है कि कवि की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर महात्मा गाँधी ने उन्हें 'मैथिली काव्य मान' ग्रन्थ भेंट करते हुए 'राष्ट्रकवि' की उपाधि प्रदान की।

गुप्त जी का कवि कण्ठ ब्रजभाषा में फूटा था। उन्होंने अपने काव्यारम्भ में 'मधुप' और 'रसिकेन्द्र' नाम से कुछ पद्य ब्रजभाषा में लिखे भी। लेकिन शीघ्र ही

वे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा प्रभाव शक्ति के कारण खड़ी बोली में कविता करने लगे। उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी को उँगली पकड़कर पैदल चलना सिखाया और एक दिन इतना परिमार्जित कर दिया कि वह सर्जनात्मक शक्ति से दौड़ने लगी। खड़ी बोली स्वाधीनता आन्दोलन की भाषा रही है—विद्रोह की शक्ति रही है। इस भाषा में प्रान्त नहीं, पूरा देश खुलकर बोला है। यहाँ कहना होगा कि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी काव्य के निर्माता थे और इस दृष्टि से उनका ऐतिहासिक महत्त्व अविस्मरणीय है। राष्ट्रीय सांस्कृतिक नवजागरण ने हमारी संस्कृति-सभ्यता के इतिहास और साहित्य में विश्वास का जो स्वर उत्पन्न किया था, उसकी अधिकाधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति सबसे पहले मैथिलीशरण गुप्त की सर्जनात्मकता में ही हुई। हिन्दी प्रदेशों के साथ भारतीय राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का मैथिलीशरण गुप्त ने पचास वर्ष तक नेतृत्व किया। गुप्त जी ने अनुभव किया कि लोक-वेदना और लोक-चिन्ता को वाणी दिये बिना कवि-कर्म का दायित्व पूरा नहीं होता। फलतः वे अपने देश और काल की समस्याओं-चुनौतियों के अनुरूप काव्य-सृजन में पूरे मनोयोग से प्रवृत्त हो गये। उन्होंने हिन्दी कविता को रीतिवाद से मुक्त करते हुए देश-प्रेम, राष्ट्रीयता, साम्राज्यवाद विरोध की दिशा में मोड़कर दम लिया। भारतेन्दु और श्रीधर पाठक के बीज-भाव मैथिलीशरण गुप्त के सर्जन में पल्लवित-पुष्पित हुए। आज भी उनकी स्मृति से प्रेरणा की सुगन्ध आती है।

मैथिलीशरण गुप्त का काव्य-फलक अत्यन्त व्यापक है। भारतीय साहित्य के अतीत और वर्तमान दोनों पर उनकी दृष्टि रही है। रामायण-महाभारत काल के साथ उनका विशेष रागात्मक सम्बन्ध है। वैदिक युग और बौद्धकाल के कई कथानक उन्होंने उत्साहपूर्वक लिए हैं। राजपूतकाल के प्रति भी उनका आकर्षण कम नहीं है। इधर वर्तमान को तो उन्होंने अपनी युग चेतना और काव्य-संवेदना का केन्द्र बनाया ही है। वर्तमान युग के भी कई चरण उन्होंने देखे थे—बालजीवन उनका सांस्कृतिक नवजागरण काल में बीता, यौवन जागरण सुधार-आन्दोलनों के युग में, प्रौढ़ावस्था गाँधी जी के सत्याग्रह-युग में और जीवन का चौथा चरण स्वतन्त्र भारत के नेहरू-युग में। जीवन के सभी सांस्कृतिक-राजनीतिक पहलुओं का उनके काव्य में विस्तार से चित्रण है।

गुप्त जी गाँधी युग के प्रतिनिधि कवि हैं। गाँधी युग की प्रायः समस्त मूल-प्रवृत्तियाँ—अंग्रेजी शासन के अत्याचार और उनके विरुद्ध संघर्ष, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा-आन्दोलन, किसान-मजदूर आन्दोलन, जेल जीवन, स्वतन्त्रता का उल्लास, विभाजन की विभीषिका, गाँधी जी की हत्या, संसद की गतिविधि, महँगाई की समस्या, चीन का आक्रमण, राजभाषा का प्रश्न, दलित-समस्या, उपेक्षिताओं के उद्धार की समस्या, नारी अस्मिता के खौलते प्रश्न, अशिक्षा की समस्या, पाश्चात्य सम्पर्क के शुभ-अशुभ प्रभाव, पारिवारिक जीवन-विधान में होनेवाले परिवर्तन,

ग्राम्य-जीवन का चित्रण आदि। अद्भुत बात यह है कि उनमें प्रगति और परम्परा, आधुनिकता और समसामयिकता, इतिहास और संस्कृति, परिवर्तन और निरन्तरता दोनों का सन्तुलित योग है। युगबोध की दृष्टि से अपने समकालीन साहित्यकारों में वे प्रेमचन्द के समकक्ष खड़े हैं।

उनमें लोक-जीवन, लोक-संवेदना और लोक-चेतना के कारण शुद्ध आभिजात्यवादी तत्त्वों के प्रति आग्रह न था। यह कवि आरम्भ से अन्त तक लोक-मंगलमूलक काव्य-कला, नाट्यकला, अनुवाद-कला आदि की साधना करता रहा। कवि के अपने शब्दों में, 'अर्पित हो मेरा मनुज काय/बहुजन हिताय बहुजन हिताय'। अतः उनकी काव्य-साधना का उद्देश्य है—लोक-कल्याण। आज हम क्या हो गये हैं? इसी क्या का उत्तर देने के लिए उन्होंने समस्त राष्ट्र का आह्वान किया था। वर्तमान का संशोधन करने के लिए यह जानना भी आवश्यक था कि अतीत में हम कौन थे और भविष्य में क्या होंगे? इस प्रकार उनके विचार का केन्द्र है वर्तमान। वे अतीतोपजीवी रचनाकार नहीं हैं। गुप्त जी प्रकृति के कवि नहीं हैं और न व्यापक अर्थों में उन्हें सौन्दर्य का कवि कहा जा सकता है। मूलतः वे मानव-रागों, मानव-सम्बन्धों के कवि हैं। इस दृष्टि से उन्हें वाल्मीकि, व्यास, भवभूति, तुलसी, भारतेन्दु की परम्परा का रचनाकार कहा जा सकता है।

मैथिलीशरण गुप्त परम्परागत अर्थ में आस्तिक हैं—वैष्णव हैं। राम के रूप में ईश्वर के प्रति उनकी अविचल आस्था है। इस तरह उनका मानववाद वैष्णव मानववाद ही है। इस वैष्णव मानववाद में सभी को (हिन्दू, शैव, शाक्त, सिख, मुसलमान, ईसाई सभी) जगह है। वे मुहम्मद साहब पर 'काबा-कर्बला' लिखते हैं, सिख-गुरुओं पर 'गुरुकुल' तथा कार्ल मार्क्स की पत्नी 'जयिनी' पर कविता। कहना होगा कि उनके सृजन-चिन्तन में पश्चिमवाद का 'अदर' या 'अन्य' नहीं है। भारतीय लोक मानस का आस्तिक समाजवाद उनकी 'भारतीयता' है। मैथिलीशरण गुप्त जी की इन्हीं मानववादी प्रवृत्तियों को स्थायी रूप देने के लिए इस ग्रन्थावली की योजना बनाई गयी है। विषय और विधा दोनों दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर विभिन्न खण्डों का विभाजन किया गया है। कुल मिलाकर ये बारह खण्ड हैं—

1. पहला खण्ड—काव्य
2. दूसरा खण्ड—काव्य
3. तीसरा खण्ड—काव्य
4. चौथा खण्ड—काव्य
5. पाँचवाँ खण्ड—काव्य
6. छठवाँ खण्ड—काव्य
7. सातवाँ खण्ड—काव्य
8. आठवाँ खण्ड—काव्य

9. नवाँ खण्ड—मौलिक एवं अनूदित नाटक
10. दसवाँ खण्ड—बांग्ला अनुवाद
11. ग्यारहवाँ खण्ड—अनुवाद
12. बारहवाँ खण्ड—विविध साहित्य

ग्रन्थावली को क्रमबद्ध करने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है। किन्तु इस बात का ध्यान रखा गया है कि ग्रन्थावली अधिकाधिक उपयोगी हो सके। गुप्त जी के सुपुत्र ऊर्मिलाचरण गुप्त के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ। उनके सहयोग के बिना यह कार्य सम्भव ही नहीं हो पाता। उनके प्रति हार्दिक धन्यवाद। श्री अरुण माहेश्वरी और वाणी प्रकाशन से सम्बद्ध सभी व्यक्तियों ने जिस तत्परता और लगन से इस विशाल योजना को सम्पूर्ण कराया है, वह प्रशंसनीय है।

इन शब्दों के साथ मैथिलीशरण गुप्त का सम्पूर्ण रचना-संसार ग्रन्थावली के रूप में, हम पाठकों को समर्पित करते हैं। गुप्त जी के रचना-कर्म के 'पाठ' या टेक्स्ट की बहुलार्थकता का इस कार्य से थोड़ा-सा भी विकास सम्भव हुआ तो अपने को कृतकार्य मानूँगा।

—कृष्णदत्त पालीवाल

प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष
हिन्दी-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-110007

अनुक्रमणिका

यशोधरा

शुल्क

भाई सियारामशरण,

तुम कहानियाँ लिखते-पढ़ते हो। सुनो, एक कहानी।

सन्ध्या हो रही थी। किसी गाँव के एक कृषक गृहस्थ के चत्वर पर कोई हारा-थका पथिक अपनी पोटली रखकर बैठ गया और अपने दुपट्टे के छोर से व्यजन करने लगा। गृहस्थ ने घर से निकल कर कहा—"महाराज, यहाँ ठहरने का स्थान गाँव के बाहर का शिवालय है।" आगन्तुक ने दीन भाव से कहा—"भैया, हमें कुछ न चाहिए। थके-माँदे कहाँ जायँगे? रात-भर यहाँ एक ओर पड़े रहने दो। सबेरे अपना मार्ग लेंगे।"

"कुछ कथा-वार्ता रामायण आदि कहते हो?"

"यदि इसके बिना आश्रय न मिले तो कुछ सुना दूँगा।"

"तब पड़े रहो।"

गृहस्थ भीतर चला गया। तनिक देर में उसका लड़का बाहर से आया। पथिक को उसी भाँति उससे भी निबटना पड़ा। परन्तु वह माता (देवी) के भजनों का प्रेमी था। पथिक ने उनके लिए भी हामी भरी।

थोड़ी देर में उसका छोटा भाई आ पहुँचा। उससे भी वही झंझट। वह आल्हा का रसिक था। पथिक को आल्हा सुनाना भी स्वीकार करना पड़ा।

रात में सब खा-पीकर बैठे। पथिक का शरीर चूर-चूर हो रहा था। इधर श्रोता अपनी-अपनी कह रहे थे। गृहस्थ ने कहा—"महाराज, हो जाने दो, एक-आध चौपाई।" छोटे लड़के ने क्रम भंग करते हुए, बड़े भाई के कुछ कहने के पहले ही कहा—"कहाँ की चौपाई? महाराज, आल्हा होने दो, मैंने पहले ही कह दिया था।" बड़े लड़के ने बिगड़कर कहा—"मूसल बदलना है हमें आल्हा से? महाराज, माता का भजन आरम्भ करो।"

सब अपनी-अपनी बात के लिए हठ करने लगे। पथिक ने किसी भाँति बैठ कर कहा—"भाई, मुझे लेकर क्यों आपस में कलह करते हो? लो सब सुनो—

मंगल - भवन, अमंगलहारी,
द्रवहु सो दशरथ-अजिर बिहारी।

यह हुई कथा!

दिन की उवन, करन की बेरा,
सुरहिन वन कों जाय हो माय।

यह हुआ माता का भजन!! और

कारी बदरिया बहन हमारी
कौंधा बीरन लगे हमार।
आज बरस जा मोरी कनबज में
कन्ता एक रैंन रह जायँ।

यह हुआ आल्हा!!! अब तो सोने दोगे?''

कहानी तुम्हें रुची हो या नहीं, परन्तु तुम अकेले ही मेरे लिए उस गृहस्थ के सम्मिलित कुटुम्ब हो रहे हो! मेरी शक्ति का विचार किये बिना ही मुझसे ऐसे ही अनुरोध किया करते हो। कविता लिखो, गीत लिखो, नाटक लिखो। अच्छी बात है। लो कविता, लो गीत, लो नाटक और लो गद्य-पद्य, तुकान्त-अतुकान्त सभी कुछ, परन्तु वास्तव में कुछ भी नहीं!

भगवान् बुद्ध और उनके अमृत-तत्त्व की चर्चा तो दूर की बात है, राहुल-जननी के दो-चार आँसू ही तुम्हें इसमें मिल जायँ तो बहुत समझना। और, उनका श्रेय भी 'साकेत' की ऊर्मिला देवी को ही है, जिन्होंने कृपापूर्वक कपिलवस्तु के राजोपवन की ओर मुझे संकेत किया है।

हाय! यहाँ भी वही उदासीनता! अमिताभ की आभा में ही उनके भक्तों की आँखें चौंधिया गयीं और उन्होंने इधर देखकर भी नहीं देखा। सुगत का गीत तो देश-विदेश के कितने ही कवि-कोविदों ने गाया है, परन्तु गर्विणी गोपा की स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता देख कर मुझे शुद्धोदन के शब्दों में यही कहना पड़ा है कि—

गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको।

अथवा तुम्हारे शब्दों में मेरी वैष्णव-भावना ने तुलसीदल दे कर यह नैवेद्य बुद्धदेव के सम्मुख रक्खा है। कविराजों के राज-भोग व्यंजन मैं कहाँ पाऊँगा? देखूँ, वे इस अकिंचन की यह 'खिचड़ी' स्वीकार करते हैं या नहीं!

लो भाई, तुम्हें इससे सन्तोष हो या नहीं, तुम्हारे अधिकार का शुल्क चुकाने की चेष्टा मैंने अवश्य की है। स्वस्तिरस्तु।

चिरगाँव
प्रबोधिनी 1989

तुम्हारा
मैथिलीशरण

कथा-सूत्र

कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोदन के पुत्र रूप में भगवान् बुद्धदेव का अवतार हुआ था। उनकी जननी मायादेवी उन्हें जन्म देकर ही मानों कृतकृत्य होकर मुक्ति पा गयीं। शुद्धोदन की दूसरी रानी नन्द-जननी महाप्रजावती ने उनका लालन-पालन किया। उनका नाम सिद्धार्थ और गौतम भी था। सिद्धि-लाभ करके वे बुद्ध कहलाये। सुगत, तथागत और अमिताभ आदि और भी उनके अनेक नाम हैं।

बाल्यकाल से ही उनमें वीतराग के लक्षण प्रकट होने लगे थे। शिक्षा प्राप्त करने पर उनकी और भी वृद्धि हुई। शुद्धोदन को चिन्ता हुई और उन्हें संसारी बनाने के लिए उन्होंने उनका ब्याह कर देना ही ठीक समझा। खोज और परीक्षा करने पर देवदह की राजकुमारी यशोधरा ही जिसे गोपा भी कहते हैं, उनकी वधू बनने योग्य सिद्ध हुई?

यशोधरा के पिता महाराज दण्डपाणि ने सम्बन्ध स्वीकार करने के पहले वर की विद्या-बुद्धि के साथ उसके बल-वीर्य की भी परीक्षा लेनी चाही। सिद्धार्थ ने शास्त्र शिक्षा के साथ ही साथ शस्त्र शिक्षा भी ग्रहण की थी। परन्तु शास्त्र की ओर ही पुत्र का मनोयोग समझ कर पिता को कुछ चिन्ता हुई। तथापि कुमार सब परीक्षाओं में अनायास ही उत्तीर्ण हो गये। ''टूटत ही धनु भयेहु विवाहू'' के अनुसार यशोधरा के साथ उनका विवाह हो गया।

पिता ने उनके लिए ऐसा प्रासाद बनवाया था जिसमें सभी ऋतुओं के योग्य सुख के साधन एकत्र थे। किसी राग-रंग और आमोद-प्रमोद की कमी न थी। परन्तु भगवान् तो इसके लिए अवतीर्ण हुए नहीं थे। पिता का प्रबन्ध था कि जो कुछ स्वस्थ, शोभन और सजीव हो उसी पर उनकी दृष्टि पड़े। परन्तु एक दिन एक रोगी को, दूसरे दिन एक वृद्ध को और तीसरे दिन एक मृतक को देखकर, संसार की इस गति पर गौतम को बड़ी ग्लानि एवं करुणा आयी और उन्होंने इसका उपाय खोजने के लिए एक दिन, अपना घर छोड़ दिया। उनके उस प्रयाण को महाभिनिष्क्रमण कहते हैं।

तब तक उनके एक पुत्र भी हो चुका था। उसका नाम था राहुल। अभी उसके

इसके पहले स्वयं मार (कामदेव) ने उन्हें उस मार्ग से विरत करना चाहा। क्योंकि वह विषयों का विरोधी मार्ग था। सुन्दरी अप्सराएँ उनके सामने प्रकट हुईं। परन्तु वे ऐसे ऋषि-मुनि न थे जो डिग जाते।

मार ने लुभाने की ही चेष्टा नहीं की, उन्हें डराया-धमकाया भी। कितनी ही विभीषिकाएँ उनके सामने आयीं, परन्तु वे अटल रहे।

स्वयं जीवनमुक्त होकर भगवान् ने जीवमात्र के लिए मुक्ति का मार्ग खोल दिया।

कर्मकाण्ड के आडम्बर की अपेक्षा सदाचार को उन्होंने प्रधानता दी और यज्ञों के नाम से होने वाली जीव-हिंसा का घोर विरोध किया।

जो पाँच भिक्षु उनका साथ छोड़ कर चले गये थे उन्हीं को सबसे पहले भगवान् के उपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। संसार भर में जिसकी धूम मच गयी, काशी के समीप सारनाथ में ही आरम्भ में, उस धर्मचक्र का परिवर्तन हुआ। वे भिक्षु उन दिनों वहीं थे।

रोहिणी नदी के तीर पर कपिलवस्तु में भी यह समाचार कैसे न पहुँचता? शुद्धोदन ने बुद्धदेव को बुलाने के लिए दूत भेजे। परन्तु जो जो उन्हें लेने के लिए गये वे सब उनके दर्शन और उपदेश से स्वयं संसार त्यागी होकर उनके संघ में दीक्षित हो गये। अन्त में शुद्धोदन ने अपने मन्त्रि पुत्र को, जो सिद्धार्थ का बाल्यसखा था, उन्हें लेने के लिए भेजा। वह भी भगवान् के संघ में प्रविष्ट हो गया परन्तु शुद्धोदन से प्रतिज्ञा कर आया था, इसलिए भगवान् को उनका स्मरण दिलाना न भूला।

भगवान् कपिलवस्तु पधारे। रात को वे नगर के बाहर उद्यान में रहे। सवेरे नियमानुसार भिक्षा के लिए निकले। इस समाचार से वहाँ हलचल मच गयी। यशोधरा को बड़ा परिताप हुआ। शुद्धोदन ने खेदपूर्वक उनसे कहा—'क्या यही हमारे कुल की परिपाटी है?' भगवान् ने कहा—'नहीं, यह बुद्ध-कुल की परिपाटी है।'

भगवान् राजप्रासाद में पधारे। सबने उनका उचित स्वागत समादर किया। परन्तु यशोधरा उस समारोह में सम्मिलित न हुई। उससे कहा गया तो उसने यही कहा—'भगवान् की मुझ पर कृपा होगी तो वे स्वयं ही मेरे समीप पधारेंगे।' अन्त में भगवान् ही उसके निकट गये और उस समय भी इस महीयसी महिला ने उन्हें राहुल का दान देकर अपने महत्त्याग का परिचय दिया।

अबला-जीवन, हाय! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल में है दूध और आँखों में पानी!

श्रीगणेशाय नमः

यशोधरा

मंगलाचरण

राम, तुम्हारे इसी धाम में
नाम-रूप-गुण-लीला-लाभ,
इसी देश में हमें जन्म दो,
लो, प्रणाम हे नीरजनाभ।
धन्य हमारा भूमि-भार भी,
जिससे तुम अवतार धरो,
भुक्ति-मुक्ति माँगें क्या तुमसे,
हमें भक्ति दो, ओ अमिताभ!

सिद्धार्थ

1

घूम रहा है कैसा चक्र!
वह नवनीत कहाँ जाता है, रह जाता है तक्र।

पिसो, पड़े हो इसमें जब तक,
क्या अन्तर आया है अब तक?
सहें अन्ततोगत्वा कब तक—
हम इसकी गति वक्र?
घूम रहा है कैसा चक्र!

कैसे परित्राण हम पावें?
किन देवों को रोवें-गावें?
पहले अपना कुशल मनावें
वे सारे सुर-शक्र!
घूम रहा है कैसा चक्र!

बाहर से क्या जोड़ूँ-जाड़ूँ?
मैं अपना ही पल्ला झाड़ूँ।
तब है, जब वे दाँत उखाड़ूँ,
रह भव-सागर-नक्र!
घूम रहा है कैसा चक्र!

2

देखी मैंने आज जरा!
हो जावेगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा?

हाय! मिलेगा मिट्टी में वह वर्ण-सुवर्ण खरा?
सूख जायगा मेरा उपवन, जो है आज हरा?

सौ-सौ रोग खड़े हों सम्मुख, पशु ज्यों बाँध परा,
धिक्! जो मेरे रहते, मेरा चेतन जाय चरा!

रिक्त मात्र है क्या सब भीतर, बाहर भरा-भरा?
कुछ न किया, यह सूना भव भी यदि मैंने न तरा।

3

मरने को जग जीता है!
रिसता है जो रन्ध्र-पूर्ण घट,
भरा हुआ भी रीता है।

यह भी पता नहीं, कब, किसका
समय कहाँ आ बीता है?
विष का ही परिणाम निकलता,
कोई रस क्या पीता है?

कहाँ चला जाता है चेतन,
जो मेरा मनचीता है?
खोजूँगा मैं उसको, जिसके
बिना यहाँ सब तीता है।

भुवन-भावने, आ पहुँचा मैं,
अब क्यों तू यों भीता है?
अपने से पहले अपनों की
सुगति गौतमी गीता है।

4

कपिलभूमि-भागी, क्या तेरा
यही परम पुरुषार्थ हाय!
खाय-पिये, बस जिये-मरे तू,
यों ही फिर फिर आय-जाय ?

अरे योग के अधिकारी, कह,
यही तुझे क्या योग्य हाय!
भोग-भोग कर मरे रोग में,
बस वियोग ही हाथ आय?

सोच हिमालय के अधिवासी,
यह लज्जा की बात हाय!
अपने आप तपे तापों से
तू न तनिक भी शान्ति पाय?

बोल युवक, क्या इसी लिए है
यह यौवन अनमोल हाय!
आकर इसके दाँत तोड़ दे,
जरा भंग कर अंग-काय?

बता जीव, क्या इसीलिए है
यह जीवन का फूल हाय!
पका और कच्चा फल इसका
तोड़-तोड़ कर काल खाय?
एक बार तो किसी जन्म के

साथ मरण अनिवार हाय!
बार-बार धिक्कार, किन्तु यदि
रहे मृत्यु का शेष दाय!

अमृतपुत्र, उठ, कुछ उपाय कर,
चल, चुप हार न बैठ हाय!
खोज रहा है क्या सहाय तू?
मेट आप ही अन्तराय।

5

पड़ी रह तू मेरी भव-भुक्ति!
मुक्ति हेतु जाता हूँ यह मैं, मुक्ति, मुक्ति, बस मुक्ति!
मेरा मानस-हंस सुनेगा और कौन सी युक्ति?
मुक्ताफल निर्द्वन्द चुनेगा, चुन ले कोई शुक्ति।

महाभिनिष्क्रमण

आज्ञा लूँ या दूँ मैं अकाम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

रख अब अपना यह स्वप्न-जाल,
निष्फल मेरे ऊपर न डाल।
मैं जागरूक हूँ, ले सँभाल—
निज राज-पाट, धन, धरणि, धाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

रहने दे वैभव यशःशोभ,
जब हमीं नहीं, क्या कीर्तिलोभ?
तू क्षम्य, करूँ क्यों हाय क्षोभ,
थम, थम अपने को आप थाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

क्या भाग रहा हूँ भार देख?
तू मेरी ओर निहार देख!
मैं त्याग चला निस्सार देख,
अटकेगा मेरा कौन काम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

रूपाश्रय तेरा तरुण गात्र,
कह, वह कब तक है प्राण-पात्र?
भीतर भीषण कंकाल मात्र,
बाहर बाहर है टीम-टाम।
ओ भणभंगुर भव, राम राम!

प्रच्छन्न रोग हैं, प्रकट भोग
संयोग मात्र भावी वियोग!
हा लोभ-मोह में लीन लोग,
भूले हैं अपना अपरिणाम!
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

यह आर्द्र-शुष्क, यह उष्ण शीत,
यह वर्तमान, यह तू व्यतीत!
तेरा भविष्य क्या मृत्यु-भीत?
पाया क्या तूने घूम-घाम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

मैं सूँघ चुका वे फुल्ल-फूल,
झड़ने को हैं सब झटित झूल।
चख देख चुका हूँ मैं, समूल—
सड़ने को हैं वे अखिल आम!
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

मुन-सुन कर, छू-छू कर अशेष,
मैं निरख चुका हूँ निर्निमेष,
यदि राग नहीं, तो हाय! द्वेष,
चिर-निद्रा की सब झूम-झाम!
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

उन विषयों में परितृप्त? हाय!
करते हैं हम उल्टे उपाय।
खुजलाऊँ मैं क्या बैठ काय?
हो जाय और भी प्रबल पाम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

सब दे कर भी क्या आज दीन,
अपने या तेरे निकट हीन?
मैं हूँ अब अपने ही अधीन,
पर मेरा श्रम है अविश्राम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

इस मध्य निशा में ओ अभाग,
तुझको तेरे ही अर्थ त्याग,
जाता हूँ मैं यह वीतराग।
दयनीय, ठहर तू क्षीण-क्षाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

तू दे सकता था विपुल वित्त,
पर भूलें उसमें भ्रान्त चित्त।
जाने दे चिर जीवन निमित्त,
दूँ क्या मैं तुझको हाड़-चाम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

रह काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह,
लेता हूँ मैं कुछ और टोह।
कब तक देखूँ चुपचाप ओह!
आने-जाने की धूम-धाम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

हे ओक, न कर तू रोक-टोक,
पथ देख रहा है आर्त्त लोक,
मेटूँ मैं उसका दुख-शोक,
बस, लक्ष्य यही मेरा ललाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

मैं त्रिविध-दुःख-विनिवृत्ति-हेतु
बाँधूँ अपना पुरुषार्थ-सेतु,
सर्वत्र उड़े कल्याण-केतु,
तब है मेरा सिद्धार्थ नाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

वह कर्म-काण्ड-ताण्डव-विकास,
वेदी पर हिंसा-हास-रास,
लोलुप-रसना का लोल-लास,
तुम देखो ऋग्, यजु और साम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

आ, मित्र-चक्षु के दृष्टि-लाभ,
ला, हृदय-विजय-रस-वृष्टि-लाभ।
पा, हे स्वराज्य, बढ़ सृष्टि-लाभ
जा दण्ड-भेद, जा साम-दाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

तब जन्मभूमि, तेरा महत्त्व,
जब मैं ले आऊँ अमर-तत्त्व।
यदि पा न सके तू सत्य-सत्व,
तो सत्य कहाँ? भ्रम और भ्राम!
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

हे पूज्य पिता, माता, महान्,
क्या माँगूँ तुमसे क्षमा दान?
क्रन्दन क्यों? गाओ भद्र-गान,
उत्सव हो पुर-पुर, ग्राम-ग्राम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

हे मेरे प्रतिभू, तात नन्द,
पाऊँ यदि मैं आनन्द-कन्द
तो क्यों न उसे लाऊँ अमन्द?
तू तो है मेरे ठौर-ठाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

अयि गोपे, तेरी गोद पूर्ण,
तू हास-विलास-विनोद पूर्ण!
अब गौतम भी हो मोद पूर्ण,
क्या अपना विधि है आज वाम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

क्या तुझे जगाऊँ एक बार?
पर है अब भी अप्राप्त सार,
सो, अभी स्वप्न ही तू निहार,
हे शुभे, श्वेत के साथ श्याम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

राहुल, मेरे ऋण-मोक्ष, माप!
लाऊँ मैं जब तक अमृत आप,
माँ ही तेरी माँ और बाप,
दुल, मातृ-हृदय के मृदुल दाम!
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

यह घन तम, सन-सन पवन जाल,
भन-भन करता यह काल-व्याल,
मूर्च्छित विषाक्त वसुधा विशाल!
भय, कह, किस पर यह भूरिभाम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

छन्दक, उठ, ला निज वाजिराज,
तज भय-विस्मय, सज शीघ्र साज।
सुन, मृत्यु-विजय-अभियान आज!
मेरा प्रभात यह रात्रि-याम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

वह जन्म-मरण का भ्रमण-भाण,
मैं देख चुका हूँ अपरिमाण।
निर्वाण-हेतु मेरा प्रयाण,
क्या वात-वृष्टि, क्या शीत-घाम।
ओ, क्षणभंगुर भव, राम राम!

हे राम, तुम्हारा वंशजात,
सिद्धार्थ, तुम्हारी भाँति, तात,
घर छोड़ चला यह आज रात,
आशीष उसे दो, लो प्रणाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

यशोधरा

1

नाथ, कहाँ जाते हो?
अब भी यह अन्धकार छाया है।
हा! जग कर क्या पाया,
मैंने वह स्वप्न भी गँवाया है!

2

सखि, वे कहाँ गये हैं?
मेरा बायाँ नयन फड़कता है।
पर मैं कैसे मानूँ?
देख, यहाँ यह हृदय धड़कता है।

3

आली वही बात हुई, भय जिसका था मुझे,
मानती हूँ उनको गहन-वन-गामी मैं,
ध्यान-मग्न देख उन्हें एक दिन मैंने कहा—
'क्यों जी, प्राणवल्लभ कहूँ या तुम्हें स्वामी मैं?'
चौंक, कुछ लज्जित से, बोले हँस आर्यपुत्र—
'योगेश्वर क्यों न होऊँ, गोपेश्वर नामी मैं!
किन्तु चिन्ता छोड़ो, किसी अन्य का विचार करूँ
तो हूँ जार पीछे, प्रिये! पहले हूँ कामी मैं!'

4

कह आली, क्या फल है
अब तेरी उस अमूल्य सज्जा का?
मूल्य नहीं क्या कुछ भी
मेरी इस नग्न लज्जा का!

5

सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात,
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात।

सखि, वे मुझसे कह कर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?

मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहचाना ?
मैंने मुख्य उसी को जाना,
जो वे मन में लाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में—
क्षात्र-धर्म के नाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किस पर विफल गर्व अब जागा ?
जिसने अपनाया था त्यागा;

रहें स्मरण ही आते!
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते?
गये तरस ही खाते!
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुख से,
उपालम्भ दूँ मैं किस मुख से—
आज अधिक वे भाते!
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

गये, लौट भी वे आवेंगे,
कुछ अपूर्व-अनुपम लावेंगे,
रोते प्राण उन्हें पावेंगे?
पर क्या गाते-गाते?
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

6

प्रियतम! तुम श्रुति-पथ से आये।
तुम्हें हृदय में रख कर मैंने अधर-कपाट लगाये।

मेरे हास-विलास! किन्तु क्या भाग्य तुम्हें रख पाये?
दृष्टि मार्ग से निकल गये ये तुम रसमय मनभाये!
प्रियतम! तुम श्रुति-पथ से आये।

यशोधरा क्या कहे और अब, रहो कहीं भी छाये,
मेरे ये निःश्वास व्यर्थ, यदि तुमको खींच न लाये।
प्रियतम! तुम श्रुति-पथ से आये।

7

नाथ, तुम
जाओ, किन्तु लौट आओगे, आओगे, आओगे।
नाथ, तुम
हमें बिना अपराध अचानक छोड़ कहाँ जाओगे?
नाथ, तुम
अपनाकर सम्पूर्ण सृष्टि को मुझे न अपनाओगे?
नाथ, तुम
उसमें मेरा भी कुछ होगा, जो कुछ तुम पाओगे।

8

सास-ससुर पूछेंगे
तो उनसे क्या अभी कहूँगी मैं ?
हा! गर्विता तुम्हारी
मौन रहूँगी, सहूँगी मैं ।

नन्द

आर्य, यह मुझ पर अत्याचार!
राज्य तुम्हारा प्राप्य, मुझे ही था तप का अधिकार!

छोड़ा मेरे लिए हाय! क्या तुमने आज उदार?
कैसे भार सहेगा सम्प्रति, राहुल है सुकुमार?
आर्य, यह मुझ पर अत्याचार!

नन्द तुम्हारी थाती पर ही देगा सब कुछ वार,
किन्तु करोगे कब तक आ कर तुम उसका उद्धार?
आर्य, यह मुझ पर अत्याचार!

महाप्रजावती

मैंने दूध पिला कर पाला।
सोती छोड़ गया पर मुझको वह मेरा मतवाला!

कहाँ न जाने वह भटकेगा,
किस झाड़ी में जा अटकेगा।
हाय! उसे काँटा खटकेगा,
वह है भोला-भाला।
मैंने दूध पिला कर पाला।

निकले भाग्य हमारे सूने,
वत्स, दे गया तू दुख दूने,
किया मुझे कैकेयी तूने,
हाँ कलंक यह काला।
मैंने दूध पिला कर पाला।

कह, मैं कैसे इसे सहूँगी?
मर कर भी क्या बची रहूँगी?
जीजी से क्या हाय! कहूँगी?
जीते जी यह ज्वाला।
मैंने दूध पिला कर पाला।

जरा आ गयी यह क्षण भर में,
बैठी हूँ मैं आज डगर में!
लकड़ी तो ऐसे अवसर में
देता जा, ओ लाला!
मैंने दूध पिला कर पाला।

शुद्धोदन

1

मैंने उसके अर्थ यह, रूपक रचा विशाल,
किन्तु भरी खाली गयी, उलट गया वह ताल।

चला गया रे, चला गया!
छला न जाय हाय! वह यह मैं
छला गया रे, छला गया!
चला गया रे, चला गया!

खींचा मैंने गुण-सा तान,
निकल गया वह बाण समान!
ममते तेरा, मान महान्
दला गया रे, दला गया!
चला गया रे, चला गया!

स्वस्थ देह-सा था यह गेह,
गया प्राण-सा वह निस्स्नेह।
अश्रु! व्यर्थ है अब यह मेह,
जला गया रे, जला गया!
चला गया रे, चला गया।

उसे फूल सा रक्खा पाल,
गया गन्ध-सा वह इस काल!
यह विष-फल, काँटे-सा साल,
फला गया रे, फला गया!
चला गया रे, चला गया!

धिक्! सब राज-पाट, धन-धाम,
धन्य उसी का लक्ष्य ललाम।
किन्तु कहूँ कैसे हे राम!
भला गया रे, भला गया!
चला गया रे, चला गया!

2

शुद्धोदन–

धीरा है यशोधरे, तू, धैर्य कैसे मैं धरूँ?
तू ही बता, उसके लिए मैं आज क्या करूँ?

यशोधरा–

उनकी सफलता मनाओ तात, मन से,–
सिद्धि-लाभ करके वे लौटें शीघ्र वन से।

शुद्धोदन–

तू क्या कहती है बहू, पाऊँ मैं जहाँ कहीं,
चतुर चरों को भेज खोजूँ भी उसे नहीं?

यशोधरा–

तात, नहीं!

शुद्धोदन–

कैसी बात? बेटी, यह भूल है!

यशोधरा–

किन्तु खोज करना उन्हीं के प्रतिकूल है।

शुद्धोदन–

कैसे?

यशोधरा

तात, सोचो, क्या गये वे इसी अर्थ हैं?
खोज हम लावें उन्हें, क्या वे असमर्थ हैं?

शुद्धोदन–

बेटी, वह प्रौढ़ है क्या? वत्स भोला-भाला है।

यशोधरा–

पा लिया उन्होंने किन्तु ज्ञान का उजाला है!

शुद्धोदन–

गोपे, यह गर्व और मान क्या उचित है?

यशोधरा–

जो मैं कहती हूँ तात, हाय वही हित है।

शुद्धोदन–

जान पड़ती तू आज मुझको कठोर है।

यशोधरा–

धर्म लिए जाता मुझे आज उसी ओर है।

शुद्धोदन–

तू है सती, मान्य रहे इच्छा तुझे पति की,
मैं हूँ पिता, चिन्ता मुझे पुत्र की प्रगति की।
भूला वह भोला, उठा रक्खूँ क्या उपाय मैं?

यशोधरा–

उनसे भी भोला तुम्हें देखती हूँ हाय मैं!

पुरजन

1

भाई रे! हम प्रजाजनों का हाय! भाग्य ही खोटा!
दिखा-दिखा कर लाभ अन्त में आ पड़ता है टोटा!

रोते रहे सभी पुर-परिजन,
राज्य छोड़ कर राम गये वन,
पड़ा रहा वह धाम-धरा-धन,
खड़ा रहा परकोटा!
भाई रे! हम प्रजाजनों का हाय! भाग्य ही खोटा!

गये आज सिद्धार्थ हमारे,
जो थे इन प्राणों के प्यारे।
भार मात्र कोई अब धारे,
राज्य धूल में लोटा!
भाई रे! हम प्रजाजनों का हाय! भाग्य ही खोटा!

हम हों कितने ही अनुरागी,
हुए आज वे सब कुछ त्यागी,
कैसे उस विभूति का भागी
होता यह घर छोटा ?
भाई रे ! हम प्रजाजनों का हाय! भाग्य ही खोटा !

2

लो, यह छन्दक आया,
पर कन्थक शून्यपृष्ठ क्यों आया?
हे भगवान्! न जानें,
कौन समाचार यह लाया!

छन्दक

1

कहूँ और क्या भाई!
आना पड़ा मुझे, मैं आया, मुझको मृत्यु न आई!

मारो तुम्हीं मुझे, मर जाऊँ सुख से राम-दुहाई,
झूठ कहूँ तो सुगति न देवे मुझको, गंगा माई।

जोग-भ्रष्ट थे आर्य, उसी की धुन थी उन्हें समाई,
राज्य छोड़ संन्यास ले गये, रज ही हाय रमाई!

सोने का सुमेरु भी उनके निकट हुआ था राई,
अस्त्र, वस्त्र-भूषण क्या, उनको नहीं शिखा भी भाई।

2

हाय काट डाले वे केश!
चिकने-चुपड़े, कोमल-कच्चे, सच्चे सुरभि-निवेश।

शोभित ही रहता है शोभन, रख ले कोई वेश,
दिया समान उन्होंने सबको आशा का सन्देश।

‘करे न कोई मेरी चिन्ता, नहीं मुझे भय लेश,
सिद्धि-लाभ करके मैं फिर भी लौटूँगा निज देश।

सह सकता मैं नहीं किसी का, जन्म-जन्म का क्लेश,
तुम अपने हो, जीव मात्र का हित मेरा उद्देश्य?’

यशोधरा

1

जाओ, मेरे सिर के बाल!
आलि, कर्त्तरी ला, मैंने क्या पाले काले व्याल?

उलझें यहाँ न वे आपस में सुलझें वे व्रत-पाल।
डसें न हाय! मुझे एड़ी तक विस्तृत ये विकराल।

कसें न और मुझे अब आकर हेमहीर, मणिमाल,
चार चूड़ियाँ ही हाथों में पड़ी रहें चिरकाल।

मेरी मलिन गूदड़ी में भी है राहुल-सा लाल!
क्या है अंजन-अंगराग, जब मिली विभूति विशाल?

बस, सिन्दूर-बिन्दु से मेरा जगा रहे यह भाल,
वह जलता अंगार जला दे उनका सब जंजाल।

2

आज नया उत्सव है,
धन्य अहा! इस उमंग का क्या कहना?
सूनी अँखियों ने भी
निरख सखी, क्या अपूर्व गहना पहना!

3

वर्त्तमान मेरा अहा! है अतीत का ध्यान,
किन्तु हाय! इस ज्ञान से अच्छा था अज्ञान!

4

यह जीवन भी यशोधरा का अंग हुआ,
हाय! मरण भी आज न मेरे संग हुआ!
सखि, वह था क्या सभी स्वप्न, जो भंग हुआ?
मेरा रस क्या हुआ और क्या रंग हुआ?

5

मिला न हा! इतना भी योग,
मैं हँस लेती तुझे वियोग!
देती उन्हें विदा मैं गाकर,
भार झेलती गौरव पाकर,
यह निःश्वास न उठता हा कर,
बनता मेरा राग न रोग,
मिला न हा! इतना भी योग।
पर वैसा कैसे होना था?
वह मुक्ताओं का बोना था?
लिखा भाग्य में तो रोना था—
यह मेरे कर्मों का भोग!
मिला न हा! इतना भी योग।
पहुँचाती मैं उन्हें सजा कर,
गये स्वयं वे मुझे लजा कर।
लूँगी कैसे?—वाद्य बजा कर
लेंगे जब उनको सब लोग।
मिला न हा! इतना भी योग।

6

दूँ किस मुँह से तुम्हें उलहना?
नाथ मुझे इतना ही कहना।

हाय! स्वार्थिनी थी मैं ऐसी, रोक तुम्हें रख लेती?
जहाँ राज्य भी त्याज्य, वहाँ मैं जाने तुम्हें न देती?
आश्रय होता या वह बहना?
नाथ, मुझे इतना ही कहना।

विदा न लेकर स्वागत से भी वंचित यहाँ किया है,
हन्त! अन्त में यह अविनय भी तुमने मुझे दिया है।
जैसे रक्खो, वैसे रहना!
नाथ, मुझे इतना ही कहना।

ले न सकेगी तुम्हें वही बढ़ तुम सब कुछ हो जिसके,
यह लज्जा, यह क्षोभ भाग्य में लिखा गया कब, किसके?
मैं अधीन, मुझको सब सहना।
नाथ, मुझे इतना ही कहना!

7

अब कठोर हो वज्रादपि ओ कुसुमादपि सुकुमारी!
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

मेरे लिए पिता ने सबसे धीर-वीर वर चाहा,
आर्यपुत्र को देख उन्होंने सभी प्रकार सराहा।
फिर भी हठ कर हाय! वृथा ही उन्हें उन्होंने थाहा,
किस योद्धा ने बढ़ कर उनका शौर्य-सिन्धु अवगाहा?
क्यों कर सिद्ध करूँ अपने को मैं उन नर की नारी?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

देख कराल काल-सा जिसको काँप उठे सब भय से,
गिरे प्रतिद्वन्द्वी नन्दार्जुन नागदत्त जिस हय से,
वह तुरंग पालित-कुरंग-सा नत हो गया विनय से,
क्यों न गूँजती रंगभूमि फिर उनके जय जय जय से?
निकला वहाँ कौन उन जैसा प्रबल पराक्रमकारी?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

सभी सुन्दरी बालाओं में मुझे उन्होंने माना,
सबने मेरा भाग्य सराहा, सबने रूप बखाना,
खेद, किसी ने उन्हें न फिर भी ठीक-ठीक पहचाना,
भेद चुने जाने का अपने मैंने भी अब जाना।
इस दिन के उपयुक्त पात्र की उन्हें खोज थी सारी!
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

मेरे रूप-रंग, यदि तुझको अपना गर्व रहा है,
तो उसके झूठे गौरव का तूने भार सहा है।
तू परिवर्तनशील उन्होंने कितनी बार कहा है–
'फूला दिन किस अन्धकार में डूबा और बहा है?'
किन्तु अन्तरात्मा भी मेरा था क्या विकृत-विकारी?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

मैं अबला! पर वे तो विश्रुत वीर-बली थे मेरे,
मैं इन्द्रियासक्ति! पर वे कब थे विषयों के चेरे?
अयि मेरे अर्द्धांगि-भाव, क्या विषय मात्र थे तेरे?
हा! अपने अंचल में किसने ये अंगार बिखेरे?
है नारीत्व मुक्ति में भी तो अहो विरक्ति विहारी!
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

सिद्धि-मार्ग की बाधा नारी! फिर उसकी क्या गति है?
पर उनसे पूछूँ क्या, जिनको मुझसे आज विरति है!
अर्द्ध विश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है!
मैं भी नहीं अनाथ जगत में, मेरा भी प्रभु पति है!
यदि मैं पतिव्रता तो मुझको कौन भार-भय भारी?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

यशोधरा के भूरि भाग्य पर ईर्ष्या करने वाली,
तरस न खाओ कोई उस पर, आओ भोली-भाली!
तुम्हें न सहना पड़ा दुःख यह, मुझे यही सुख आली!
बधू-वंश की लाज दैव ने आज मुझी पर डाली।
बस जातीय सहानुभूति ही मुझ पर रहे तुम्हारी।
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

जाओ नाथ! अमृत लाओ तुम, मुझमें मेरा पानी,
चेरी ही मैं बहुत तुम्हारी, मुक्ति तुम्हारी रानी।
प्रिय तुम तपो, सहूँ मैं भरसक, देखूँ बस हे दानी–
कहाँ तुम्हारी गुण-गाथा में मेरी करुण कहानी?
तुम्हें अप्सरा-विघ्न न व्यापे यशोधराकरधारी!
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

8

सखि, प्रियतम हैं वन में?
किन्तु कौन इस मन में?

दिव्य-मूर्ति-वंचित भले चर्म-चक्षु गल जायँ,
प्रलय! पिघल कर प्रिय न जो प्राणों में ढल जायँ,
जैसे गन्ध पवन में!
सखि, प्रियतम हैं वन में?

नयन, वृथा व्याकुल न हो, नयी नहीं यह रीति,
रखते हो तुम प्रीति तो धारण करो प्रतीति।
यही बड़ा बल जन में,
सखि, प्रियतम हैं वन में?

भक्त नहीं जाते कहीं, आते हैं भगवान,
यशोधरा के अर्थ है अब भी यह अभिमान।
मैं निज राज-भवन में,
सखि, प्रियतम हैं वन में?

उन्हें समर्पित कर दिये, यदि मैंने सब काम,
तो आवेंगे एक दिन, निश्चय मेरे राम।
यहीं, इसी आँगन में,
सखि, प्रियतम हैं वन में?

9

मरण सुन्दर बन आया री!
शरण मेरे मन भाया री!

आली, मेरे मनस्ताप से पिघला वह इस बार,
रहा कराल कठोर काल सो हुआ सदय सुकुमार।
नर्म सहचर-सा छाया-री!
मरण सुन्दर बन आया री!

अपने हाथों किया विरह ने उसका सब शृंगार,
पहना दिया उसे उसने मृदु मानस-मुक्ता-हार।
विरुद विहगों ने गाया री!
मरण सुन्दर बन आया री!

फूलों पर पद रख, कूलों पर रच लहरों से रास,
मन्द पवन के स्पन्दन पर चढ़-बढ़ आया सविलास।
भाग्य ने अवसर पाया री!
मरण सुन्दर बन आया री!

फिर भी गोपा के कपाल में कहाँ आज यह भोग?
प्रियतम का क्या, यम का भी है दुर्लभ उसे सुयोग?
बनी जननी भी जाया री!
मरण सुन्दर बन आया री!

स्वामी मुझको मरने का भी दे न गये अधिकार,
छोड़ गये मुझ पर अपने उस राहुल का सब भार।
जिये जल-जल कर काया री!
मरण सुन्दर बन आया री!

10

जलने को ही स्नेह बना।
उठने को ही वाष्प बना है,
गिरने को ही मेह बना।

जलता स्नेह जलावेगा ही,
फोले वाष्प फलावेगा ही,
मिट्टी मेह गलावेगा ही
सब सहने को देह बना!
जलने को ही स्नेह बना!

यही भला, आँसू बह जावें,
रक्त-बिन्दु कह किसको भावें?
मैं उठ जाऊँ सखि, वे आवें,
बसने को ही गेह बना,
जलने को ही स्नेह बना।

11

सखि, वसन्त-से कहाँ गये वे,
मैं ऊष्मा-सी यहाँ रही।
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा व्यथा सही।

तप मेरे मोहन का उद्धव धूल उड़ाता आया,
हाय! विभूति रमाने का भी मैंने योग न पाया।
सूखा कण्ठ, पसीना छूटा, मृगतृष्णा की माया,
झुलसी दृष्टि, अँधेरा दीखा, दूर गयी वह छाया।
मेरा ताप और तप उनका,
जलती है हा! जठर मही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

जागी किसकी बाष्पराशि, जो सूने में सोती थी?
किसकी स्मृति के बीज उगे ये, सृष्टि जिन्हें बोती थी?
अरी वृष्टि, ऐसी ही उनकी दया दृष्टि रोती थी,
विश्व वेदना की ऐसी ही चमक उन्हें होती थी।
किसके भरे हृदय की धारा,
शतधा हो कर आज बही?
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

उनकी शान्ति-कान्ति की ज्योत्स्ना जगती है पल-पल में,
शरदातप उनके विकास का सूचक है थल-थल में,

नाच उठी आशा प्रति दल पर किरणों की झल-झल में,
खुला सलिल का हृदय-कमल खिल हंसों के कल-कल में।
पर मेरे मध्याह्न! बता क्यों
तेरी मूर्च्छा बनी वही?
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी, बाधा-व्यथा सही।

हेमपुंज हेमन्तकाल के इस आतप पर वारूँ,
प्रियस्पर्श की पुलकावलि मैं कैसे आज बिसारूँ ?
किन्तु शिशिर, ये ठण्डी साँसें हाय! कहाँ तक धारूँ?
तन गारूँ, मन मारूँ, पर क्या मैं जीवन भी हारूँ ?
मेरी बाँह गही स्वामी ने,
मैंने उनकी छाँह गही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा - व्यथा सही।

पेड़ों ने पत्ते तक, उनका त्याग देख कर, त्यागे,
मेरा धुँधलापन कुहरा बन छाया सबके आगे।
उनके तप के अग्नि-कुण्ड से घर-घर में हैं जागे,
मेरे कम्प, हाय! फिर भी तुम नहीं कहीं से भागे।
पानी जमा, परन्तु न मेरे
खट्टे दिन का दूध-दही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेर बाधा - व्यथा सही।

आशा से आकाश थमा है, श्वास-तन्तु कब टूटे?
दिन-मुख दमके, पल्लव चमके, भव ने नव रस लूटे!
स्वामी के सद्भाव फैल कर फूल-फूल में फूटे,
उन्हें खोजने को ही मानों नूतन निर्झर छूटे।
उनके श्रम के फल सब भोगें,
यशोधरा की विनय यही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा - व्यथा सही।

12

कूक उठी है कोयल काली।
ओ मेरे वनमाली!

चक्कर काट रही है रह-रह, सुरभि मुग्ध मतवाली,
अम्बर ने गहरी छानी यह, भू पर दुगनी ढाली!
ओ मेरे वनमाली !

समय स्वयं यह सजा रहा है डगर-डगर में डाली,
मृदु समीर-सह बजा रहा है नीर तीर पर ताली,
ओ मेरे वनमाली!

लता कण्टकित हुई ध्यान से ले कपोल की लाली,
फूल उठी है हाय! मान से प्राण भरी हरियाली।
ओ मेरे वनमाली!

ढलक न जाय अर्घ्य आँखों का, गिर न जाय यह थाली,
उड़ न जाय पंछी पाँखों का, आओ हे गुणशाली!
ओ मेरे वनमाली!

13

उनका यह कुंज-कुटीर वही
झड़ता उड़ अंशु-अवीर जहाँ,
अलि, कोकिल, कीर, शिखी सब हैं
सुन चातक की रट "पीव कहाँ?"
अब भी सब साज समाज वही
तब भी सब आज अनाथ यहाँ,
सखि, जा पहुँचे सुध-संग कहीं
यह अन्ध सुगन्ध समीर वहाँ!

14

दरक कर दिखा गया निज सार जो,
हँस दाड़िम, तू खिल खेल,
प्रकट कर सका न अपना प्यार जो,
रो कठिन हृदय, सब झेल।

15

बलि जाऊँ, बलि जाऊँ चातकि, बलि जाऊँ इस रट की!
मेरे रोम-रोम में आकर यह काँटे सी खटकी।
भटकी हाय कहाँ घन की सुध, तू आशा पर अटकी,
मुझसे पहले तू सनाथ हो, यही विनय इस घट की।

16

फलों के बीज फलों में फिर आये,
मेरे दिन फिरे न हाय!
गये घन कै कै वार न घिर आये?
वे निर्झर झिरे न हाय!

17

मैं भी थी सखि, अपने
मानस की राजहंसनी रानी,
सपने की - सी बातें!
प्रिय के तप ने सुखा दिया पानी।

राहुल-जननी

1

चुप रह, चुप रह, हाय अभागे!
रोता है, अब किसके आगे?

तुझे देख पाते वे रोता,
मुझे छोड़ जाते क्यों सोता?
अब क्या होगा? तब कुछ होता,
सोकर हम खोकर ही जागे!
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे!

बेटा, मैं तो हूँ रोने को,
तेरे सारे मल धोने को,
हँस तू, है सब कुछ होने को,
भाग्य आयँगे फिर भी भागे,
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे!

तुझको क्षीर पिला कर लूँगी,
नयन-नीर ही उनको दूँगी,
पर क्या पक्षपातिनी हूँगी?
मैंने अपने सब रस त्यागे।
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे!

2

चेरी भी वह आज कहाँ, कल थी जो रानी,
दानी प्रभु ने दिया उसे क्यों मन यह मानी?
अबला जीवन, हाय! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल में है दूध और आँखों में पानी!
मेरा शिशु संसार वह
दूध पिये, परिपुष्ट हो,
पानी के ही पात्र तुम
प्रभो, रुष्ट या तुष्ट हो।

3

यह छोटा सा छौंना!
कितना उज्ज्वल, कैसा कोमल, क्या ही मधुर सलौंना!
क्यों न हँसूँ-रोऊँ-गाऊँ मैं, लगा मुझे यह टौंना,
आर्यपुत्र, आओ, सचमुच मैं दूँगी चन्द-खिलौंना!

4

जीर्ण तरी, भूरि-भार, देख, अरी, एरी!
कठिन पन्थ, दूर पार, और यह अँधेरी !

सजनी, उलटी बयार,
वेग धरे प्रखर धार,
पद-पद पर विपद-वार,
रजनी घन-घेरी।
जीर्ण तरी, भूरि-भार, देख, अरी, एरी!

जाना होगा परन्तु,
खींच रहा कौन तन्तु?
गरज रहे घोर जन्तु,
बजती भय-भेरी।
जीर्ण तरी, भूरि-भार, देख, अरी, एरी!

समय हो रहा सम्पन्न,
अपने वश कौन यत्न?
गाँठ में अमूल्य रत्न,
बिसरी सुध मेरी।
जीर्ण तरी, भूरि-भार, देख, अरी, एरी!

भव का यह विभव साथ,
थाती भर किन्तु हाथ।
ले लें कब लौट नाथ?
सौंप बचे चेरी।

जीर्ण तरी, भूरि-भार, देख अरी, एरी!

इस निधि के योग्य पात्र
यदि था यह तुच्छ गात्र,
तो यही प्रतीति मात्र
दैव, दया तेरी।
जीर्ण तरी, भूरि-भार, देख, अरी, एरी!

5

दैव बनाये रक्खे
राहुल, बेटा, विचित्र तेरी क्रीड़ा,
तनिक बहल जाती है
उसमें मेरी अधीर पीड़ा-व्रीड़ा।

6

किलक अरे, मैं नेंक निहारू,
इन दाँतों पर मोती वारूँ!

पानी भर आया फूलों के मुँह में आज सवेरे,
हाँ, गोपा का दूध जमा है राहुल! मुख में तेरे।
लटपट चरण, चाल अटपट-सी मनभाई है मेरे,
तू मेरी अँगुली धर अथवा मैं तेरा कर धारूँ?
इन दाँतों पर मोती वारूँ!

आ, मेरे अवलम्ब, बता क्यों 'अम्ब-अम्ब' कहता है?
'पिता, पिता' कह, बेटा, जिनसे घर सूना रहता है!
दहता भी है, बहता भी है, यह जी सब सहता है।
फिर भी तू पुकार, किस मुँह से हा! मैं उन्हें पुकारूँ?
इन दाँतों पर मोती वारूँ।

7

आली, चक्र कहाँ चलता है?
सुना गया भूतल ही चलता, भानु अचल जलता है।
आली, चक्र कहाँ चलता है?

कटते हैं हम आप घूम कर, निर्वश-निर्बलता है,
दिनकर-दीप द्वीप शलभों को पल-पल में छलता है।
आली, चक्र कहाँ चलता है?

कुशल यही, वह दिन भी कटता, जो हमको खलता है,
साधक भी इस बीच सिद्धि को ले कर ही टलता है।
आली, चक्र कहाँ चलता है?

गोपा गलती है, पर उसका राहुल तो पलता है,
अश्रु-सिक्त आशा का अंकुर देखूँ कब फलता है?
आली, चक्र कहाँ चलता है?

8

"ओ माँ, आँगन में फिरता था
कोई मेरे संग लगा,
आया ज्यों ही मैं अलिन्द में
छिपा, न जाने कहाँ भगा!"

"बेटा, भीत न होना, वह था
तेरा ही प्रतिविम्ब जगा।"
"अम्ब, भीति क्या?" "मृषा भ्रान्ति वह,
रह तू रह तू प्रीति-पगा।"

9

ठहर, बाल-गोपाल कन्हैया।
राहुल, राजा भैया!

कैसे धाऊँ, पाऊँ तुझको हार गयी मैं दैया,
सद्द दूध प्रस्तुत है बेटा, दुग्ध-फेन-सी शैया।

तू ही एक खिवैया, मेरी पड़ी भँवर में नैया,
आ, मेरी गोदी में आ जा, मैं हूँ दुखिया मैया।

''मैया है तू अथवा मेरी दो थन वाली गैया?
रोने से यह रिस ही अच्छी, तिलीलिली ता थैया?''

10

"तब कहता था—'लोभ न दे' अब
चन्द-खिलौने की रट क्यों?"
"तब कहती थी—"दूँगी बेटा!"
माँ, अब इतनी खटपट क्यों?"

"कह तो झूठ-मूठ बहला दूँ? पर वह होगी छाया,
मुझको भी शैशव में शशि की थी ऐसी ही माया।
किन्तु प्रसू बन कर अब मैंने उसको तुझमें पाया,
पिता बनेगा, तभी पायगा तू वह धन मनभाया।"

"अम्ब, पुत्र ही अच्छा यह मैं,
झेलूँ इतनी झंझट क्यों?"
"पुत्र हुआ, तो पिता न होगा?
यह विरक्ति ओ नटखट! क्यों?"

11

"अम्ब, यह पंछी कौन, बोलता है मीठा बड़ा,
जिसके प्रवाह में तू डूबती है बहती।"
"बेटा, यह चातक है।" "माँ, क्या कहता है यह?"
"पी-पी, किन्तु दूध की तुझे क्या सुध रहती?"
"और यह पंछी कौन बोला वाह!" "कोयल है"
"माँ, क्यों इस कूक की तू हूक-सी है सहती?
कहती उमंग से है मेरे संग संग अहो!
'कहो-कहो' किन्तु तू कहानी नहीं कहती!"

12

"नहीं पियूँगा, नहीं पियूँगा, पय हो चाहे पानी।"
"नहीं पियेगा बेटा, यदि तू तो सुन चुका कहानी।"
"तू न कहेगी तो कह लूँगा मैं अपनी मनमानी,
सुन, राजा वन में रहता था, घर रहती थी रानी!"
"और, हठी बेटा रटता था—नानी-नानी-नानी!"
"बात काटती है तू? अच्छा, जाता हूँ मैं मानी।"
"नहीं-नहीं, बेटा आ, तूने यह अच्छी हठ ठानी,
सुन कर ही पीना, सोना मत, नयी कहूँ कि पुरानी?"

13

"व्यर्थ गल गया मेरा—
रसाल, मैंने स्वयं नहीं चक्खा था,
माँ, चुन कर सौ-सौ में
इसे पिता के लिए बचा रक्खा था।"

"वह जड़ फल सड़ जावे,
पर चेतन भावना तभी वह तेरी
अर्पित हुई उन्हें है,
वत्स, यही मति तथा यही गति मेरी।"

14

''निष्फल दो-दो वार गयी,
हार गयी माँ, हार गयी!

आगे आगे अम्ब जहाँ,
मैं पीछे चुपचाप वहाँ!
खोज फिरी तू कहाँ-कहाँ,
फिर कर क्यों न निहार गयी?
हार गयी माँ, हार गयी!

यहाँ, पिता की मूर्ति यही–
मेरे-तेरे बीच रही।
तू इसको ही देख बही,
सुध ही शोध बिसार गयी!
हार गयी माँ, हार गयी!

अब की तू छिप देख कहीं,
पर लेना निःश्वास नहीं,
पकड़ा दें जो तुझे वहीं।''
''बेटा, मैं यह वार गयी,
हार गयी हाँ, हार गयी!''

15

"अम्ब, तात कब आयँगे?"
"धीरज धर बेटा, अवश्य हम उन्हें एक दिन पायँगे।

मुझे भले ही भूल जायँ वे तुझे क्यों न अपनायँगे,
कोई पिता न लाया होगा, वह पदार्थ वे लायँगे।"

"माँ, तब पिता-पुत्र हम दोनों संग-संग फिर जायँगे।
देना तू पाथेय, प्रेम से विचर विचर कर खायँगे।

पर अपने दूने-सूने दिन तुझको कैसे भायँगे ?"
"हा राहुल! क्या वैसे दिन भी इस धरती पर धायँगे?

देखूँगी बेटा, मैं, जो भी भाग्य मुझे दिखलायँगे,
तो भी तेरे सुख के ऊपर मेरे दुःख न छायँगे!"

16

राहुल

अम्ब, मेरी बात कैसे तुझ तक जाती है?

यशोधरा

बेटा, वह वायु पर बैठ उड़ आती है।

राहुल

होंगे जहाँ तात क्या न होगा वायु माँ, वहाँ ?

यशोधरा

बेटा, जगत्प्राण वायु, व्यापक नहीं कहाँ ?

राहुल

क्यों अपनी बात वह ले जाता वहाँ नहीं?

यशोधरा

निज ध्वनि फैल कर लीन होती है यहीं।

राहुल

और उनकी भी वहीं ? फिर क्या बड़ाई है ?

यशोधरा

सबने शरीर-शक्ति मित की ही पाई है।
मन ही के माप से मनुष्य बड़ा-छोटा है,
और अनुपात से उसीके खरा-खोटा है।
साधन के कारण ही तन की महत्ता है,
किन्तु शुद्ध मन की निरुद्ध कहाँ सत्ता है?

करते हैं साधन विजन में वे तन से,
किन्तु सिद्धि लाभ होगा मन से, मनन से।
देख निज, नेत्र कर्ण जा पाते नहीं वहाँ,
सूक्ष्म मन किन्तु दौड़ जाता है कहाँ-कहाँ ?
वत्स, यही मन जब निश्चलता पाता है
आ कर इसी में तब सत्य समा जाता है।

राहुल

तो मन ही मुख्य है माँ?

यशोधरा

बेटा, स्वस्थ देह भी,
योग्य अधिवासी के लिए हो योग्य गेह भी।

17

राहुल

विहग-समान यदि अम्ब, पंख पाता मैं
एक ही उड़ान में तो ऊँचे चढ़ जाता मैं।
मण्डल बना कर मैं घूमता गगन में,
और देख लेता पिता बैठे किस वन में।
कहता मैं—तात, उठो, घर चलो, अब तो,
चौंक कर अम्ब, मुझे देखते वे तब तो।
कहते—"तू कौन है?" तो नाम बतलाता मैं।
और सीधा मार्ग दिखा शीघ्र उन्हें लाता मैं।
मेरी बात मानते हैं मान्य पितामह भी,
मानते अवश्य उसे टालते न वह भी।
किन्तु बिना पंखों के विचार सब रीते हैं
हाय! पक्षियों से भी मनुष्य गये-बीते हैं।
हम थलवासी जल में तो तैर जाते हैं
किन्तु पक्षियों की भाँति उड़ नहीं पाते हैं।
मानवों को पंख क्यों विधाता ने नहीं दिये?

यशोधरा

पंखों के बिना ही उड़ें चाहें तो, इसीलिए!

राहुल

पंखों के बिना ही अम्ब ?

यशोधरा

और नहीं ?

राहुल

कैसे माँ ?

यशोधरा

भूल गया?

राहुल

ओहो! हनूमान उड़े जैसे माँ!
क्योंकर उड़े वे भला ?

यशोधरा

बेटा, योग बल से।

राहुल

मैं भी योग साधना करूँगा अम्ब, कल से।

18

राहुल

तेरा मुँह पहले बड़ा था? अम्ब, कह तू।

यशोधरा

राहुल, क्या पूछता है, बेटा, भला यह तू?

राहुल

"रह गया तेरा मुँह छोटा" यही कह के,
दादी जी अभी तो अम्ब, रोईं रह-रह के।

यशोधरा

राहुल, तू कहता है—"खा चुका हूँ इतना!"
किन्तु मुझे लगता है, खाया अभी कितना!
बेटा, यही बात मेरी और दादी जी की है,
होती परितृप्ति कभी जननी के जी की है?

राहुल

रोईं किन्तु क्यों वे अम्ब,

यशोधरा

उनके वियोग से,
वंचित हूँ जिनके बिना मैं राज-भोग से।

राहुल

माँ, वही तो! छोटा मुँह कहने को तेरा है
दैन्य और दर्प जहाँ दोनों का बसेरा है।
चाहे मुँह छोटा रहे, किन्तु बड़ा भोला है,

छोटी और खोटी बात वह कब बोला है।
और तेरी आँखें तो बड़ी हैं अम्ब, तब भी?

यशोधरा

बेटा, तुझे देख परिपूर्ण हैं वे अब भी?

राहुल

अम्ब, जब तात यहाँ लौट कर आयँगे,
और वे भी तेरा मुँह छोटा बतलायँगे,
तो मैं, सुन, उनसे कहूँगा बस इतना—
मुँह जितना हो किन्तु मानी मन कितना?

19

“माँ, कह एक कहानी।”
“बेटा, समझ लिया क्या तूने
मुझको अपनी नानी?”
“कहती है मुझसे यह चेटी,
तू मेरी नानी की बेटी !
कह माँ! कह, लेटी ही लेटी,
राजा था या रानी ?
राजा था या रानी?
माँ, कह एक कहानी।”

“तू है हठी मानधन मेरे,
सुन, उपवन में बड़े सवेरे,
तात भ्रमण करते थे तेरे,
जहाँ सुरभि मनमानी?”
“जहाँ सुरभि मनमानी?
हाँ, माँ यही कहानी।”

“वर्ण वर्ण के फूल खिले थे,
झलमल कर हिम बिन्दु झिले थे,
हलके झोंके हिले-मिले थे,
लहराता था पानी।”
“लहराता था पानी?
हाँ, हाँ, यही कहानी।”

"गाते थे खग कल-कल स्वर से,
सहसा एक हंस ऊपर से
गिरा, बिद्ध होकर खर-शर से।
हुई पक्ष की हानी!"
"हुई पक्ष की हानी?
करुणा भरी कहानी!"

"चौंक उन्होंने उसे उठाया,
नया जन्मा सा उसने पाया।
इतने में आखेटक आया,
लक्ष्य सिद्धि का मानी।"
"लक्ष्य सिद्धि का मानी?
कोमल कठिन कहानी।"

"माँगा उसने आहत पक्षी,
तेरे तात किन्तु थे रक्षी।
तब उसने जो था खगभक्षी–
हठ करने की ठानी।"
"हठ करने की ठानी?
अब बढ़ चली कहानी।"

"हुआ विवाद सदय-निर्दय में,
उभय आग्रही थे स्वविषय में
गयी बात तब न्यायालय में,
सुनी सभी ने जानी।"
"सुनी सभी ने जानी ?
व्यापक हुई कहानी।"

"राहुल, तू निर्णय कर इसका–
न्याय पक्ष लेता है किसका?
कह दे निर्भय, जय हो जिसका।
सुन लूँ तेरी बानी।"
"माँ, मेरी क्या बानी ?
मैं सुन रहा कहानी।"

"कोई निरपराध को मारे
तो क्यों अन्य उसे न उबारे?
रक्षक पर भक्षक को वारे,
न्याय दया का दानी।"
"न्याय दया का दानी?
तूने गुनी कहानी।"

20

सो, अपने चंचलपन, सो!
सो, मेरे अंचल-धन, सो!

पुष्कर सोता है निज सर में,
भ्रमर सो रहा है पुष्कर में,
गुंजन सोया कभी भ्रमर में,
सो, मेरे गृह-गुंजन, सो!
सो, मेरे अंचल-धन, सो!

तनिक पार्श्व-परिवर्त्तन कर ले,
उस नासा पुट को भी भर ले।
उभय पक्ष का मन तू हर ले,
मेरे व्यथा-विनोदन, सो!
सो, मेरे अंचल-धन, सो!

रहे मन्द ही दीपक माला,
तुझे कौन भय कष्ट कसाला?
जाग रही है मेरी ज्वाला,
सो, मेरे आश्वासन, सो!
सो, मेरे अंचल-धन, सो!

ऊपर तारे झलक रहे हैं,
गोखों से लग ललक रहे हैं,
नीचे मोती ढलक रहे हैं,
मेरे अपलक दर्शन, सो!
सो, मेरे अंचल-धन सो!

तेरी साँसों का सुस्पन्दन,
मेरे तप्त हृदय का चन्दन!
सो, मैं कर लूँ जी भर क्रन्दन!
सो, उनके कुल नन्दन, सो!
सो, मेरे अंचल-धन, सो!

खेले मन्द पवन अलकों से,
पोंछूँ मैं उनको पलकों से।
छद-रद की छवि की छलकों से
पुलक-पूर्ण शिशु यौवन सो!
सो, मेरे अंचल-धन, सो!

यशोधरा

1

निशि की अँधेरी जवनिके, चुप चेतना जब सो रही,
नेपथ्य में तेरे, न जाने, कौन सज्जा हो रही!

मेरी नियति नक्षत्र मय ये बीज अब भी बो रही,
मैं भार फल की भावना का व्यर्थ ही क्यों ढो रही?

भर हर्ष में भी, शोक में भी, अश्रु, संसृति रो रही,
सुख-दुख दोनों दृष्टियों से सृष्टि सुध-बुध खो रही!

मैं जागती हूँ और अपनी दृष्टि अब भी धो रही,
खेला गयी सो तो गयी, वेला रहे वह, जो रही।

2

उलट पड़ा यह दिव रत्नाकर
पानी नीचे ढलक बहा,
तारक-रत्नहार सखि, उसके
खुले हृदय पर झलक रहा।
"निर्दय है या सदय हृदय वह?"
मैंने उससे ललक कहा।
हँस बोला—"ग्रह चक्र देख लो!"
पर न उठे ये पलक हहा!

3

पवन, तू शीतल मन्द-सुगन्ध।
इधर-किधर आ भटक रहा है? उधर-उधर, ओ अन्ध!
तेरा भार सहें न सहें ये मेरे अबल-स्कन्ध,
किन्तु बिगाड़ न दें ये साँसें तेरा बना प्रबन्ध!

4

मेरे फूल, रहो तुम फूले।
तुम्हें झुलाता रहे समीरण झौंटे देकर झूले।
तुम उदार दानी हो, घर की दशा सहज ही भूले,
क्षमा, कभी यह उष्णपाणि भी भूल तुम्हें यदि छूले।

5

प्रकट कर गयी धन्य रस-राग तू!
पौ, फट कर भी निरुपाय।
भरे है अपने भीतर आग तू!
री छाती, फटी न हाय!

6

यह प्रभात या रात है घोर तिमिर के साथ,
नाथ, कहाँ हो हाय तुम? मैं अदृष्ट के हाथ!

नहीं सुधानिधि को भी छोड़ा,
काल-करों ने घर अम्बर में सारा सार निचोड़ा!

टपक पड़ा कुछ इधर-उधर जो अमृत वहाँ से थोड़ा,
दूब-फूल-पत्तों ने पुट में बूँद-बूँद कर जोड़ा।

मेरे जीवन के रस तूने यदि मुझसे मुँह मोड़ा,
तो कह, किस तृष्णा के माथे वह अपना घट फोड़ा?

मेरी नयन-मालिके! माना, तूने बन्धन तोड़ा,
पर तेरा मोती न बने हा! प्रिय के पथ का रोड़ा।

7

अब क्या रक्खा है रोने में?
इन्दुकले, दिन काट शून्य के किसी एक कोने में।

तेरा चन्द्रहार वह टूटा,
किसने हाय, भरा घर लूटा ?
अर्णव सा दर्पण भी छूटा,
खोना ही, खोने में!
अब क्या रक्खा है रोने में ?

सृष्टि किन्तु सोते से जागी,
तपें तपस्वी, रत हों रागी,
सभी लोक-संग्रह के भागी,
उगना भी, बोने में।
अब क्या रक्खा है रोने में?

वेला फिर भी तुझे भरेगी,
संचय करके व्यय न करेगी?
अमृत पिये है तू न मरेगी,
सब होगा, होने में।
अब क्या रक्खा है रोने ?

सफल अस्त भी तेरा आली,
घिरे बीच में यदि न घनाली।
जागे एक नयी ही लाली—
तपे खरे सोने में।
अब क्या रक्खा है रोने में?

राहुल-जननी

1

घुसा तिमिर अलकों में भाग,
जाग, दुःखिनी के सुख, जाग!

जागा नूतन गन्ध पवन में,
उठ तू अपने राज-भवन में,
जाग उठे खग वन-उपवन में,
और खगों में कलरव-राग।
जाग, दुःखिनी के सुख, जाग!

तात! रात बीती वह काली,
उजियाली ले आयी लाली,
लदी मोतियों से हरियाली,
ले लीलाशाली, निज भाग।
जाग, दुःखिनी के सुख, जाग!

किरणों ने कर दिया सवेरा,
हिमकण-दर्पण में मुख हेरा,
मेरा मुकुर मंजु मुख तेरा,
उठ, पंकज पर पड़े पराग!
जाग, दुःखिनी के सुख, जाग!

तेरे वैतालिक गाते हैं,
स्वस्ति लिये ब्राह्मण आते हैं,
गोप दुग्ध-भाजन लाते हैं,
ऊपर झलक रहा है झाग।
जाग, दुःखिनी के सुख, जाग!

मेरे बेटा, भैया, राजा,
उठ, मेरी गोदी में आ जा,
भौंरा नचे, बजे हाँ, बाजा,
सजे श्याम हय, या सित नाग?
जाग, दुःखिनी के सुख, जाग!

जाग अरे, विस्मृत भव मेरे!
आ तू, क्षम्य उपद्रव मेरे !
उठ, उठ, सोये शैशव मेरे!
जाग स्वप्न, उठ, तन्द्रा त्याग!
जाग, दुःखिनी के सुख, जाग!

2

अम्ब, स्वप्न देखा है रात,
लिये मेष-शावक गोदी में खिला रहे हैं तात।
उसकी प्रसू चाटती है पद कर करके प्रणिपात,
घेरे हैं कितने पशु-पक्षी, कितना यातायात!
'ले लो मुझको भी गोदी में' सुन मेरी यह बात,
हँस बोले– 'असमर्थ हुई क्या तेरी जननी? जात !'
आँख खुल गयी सहसा मेरी, माँ, हो गया प्रभात,
सारी प्रकृति सजल है तुझ-सी भरे अश्रु अवदात!

3

बस, मैं ऐसी ही निभ जाऊँ।
राहुल, निज रानीपन देकर
तेरी चिर परिचर्या पाऊँ।
तेरी जननी कहलाऊँ तो
इस परवश मन को बहलाऊँ।
उबटन कर नहलाऊँ तुझको,
खिला पिला कर पट पहनाऊँ।
रीझ-खीझ कर, रूठ मना कर
पीड़ा को क्रीड़ा कर लाऊँ।
यह मुख देख देख दुख में भी
सुख से दैव-दया-गुण गाऊँ।
स्नेह-दीप उनकी पूजा का
तुझमें यहाँ अखण्ड जगाऊँ।
डीठ न लगे, डिठौना देकर,
काजल लेकर तुझे लगाऊँ।

4

कैसी डीठ? कहाँ का टौना?
मान लिया आँखों में अंजन, माँ, किस लिए डिठौना?

यही डीठ लगने के लच्छिन—छूटे खाना-पीना,
कभी काँपना, कभी पसीना, जैसे तैसे जीना ?
डीठ लगी तब स्वयं तुझे ही, तू है सुध-बुध हीना,
तू ही लगा डिठौना, जिसको काँटा बना बिछौना।
कैसी डीठ? कहाँ का टौना?

लोहित-बिन्दु भाल पर तेरे, मैं काला क्यों दूँ माँ?
लेती है जो वर्ण आप तू, क्यों न वही मैं लूँ माँ?
एक इसी अन्तर के मारे मैं अति अस्थिर हूँ माँ!
मेरा चुम्बन तुझे मधुर क्यों? तेरा मुझे सलौना!
कैसी डीठ? कहाँ का टौना?

रह जाते हैं स्वयं चकित-से मुझे देख सब कोई,
लग सकती है कह, माँ, मुझको डीठ कहाँ कब कोई?
तेरा अंक-लाभ कर मुझको चाह नहीं अब कोई।
देकर मुझे कलंक-बिन्दु तू बना न चन्द-खिलौना।
कैसी डीठ? कहाँ का टौना?

5

पात्र–

यशोधरा–गौतम-गृहिणी, राहुल-जननी।

राहुल–बुद्धदेव का पुत्र।

गंगा, **गौतमी** } यशोधरा की सखियाँ

चित्रा, **विचित्रा** } यशोधरा की दासियाँ

स्थान–

कपिलवस्तु के राजोपवन का अलिन्द।

समय–

सन्ध्या।

गंगा

देवि, यदि वह घटना सच्ची हो तो तपस्विनी सीता देवी भी इसी प्रकार पति-परित्यक्ता होकर आदिकवि के आश्रम में स्वामी का ध्यान करके कुश-लव के लिए जीवन धारण करती होंगी।

यशोधरा

मैं उन्हें प्रणाम करती हूँ। सखी, सीता देवी ने बहुत सहा। सम्भवतः मैं उतना न झेल सकती। कहते हैं, स्वामि-वंचिता होने के साथ-साथ उन्हें मिथ्या लोकापवाद भी सहन करना पड़ा था।

गंगा

श्रीकृष्ण के वियोग में गोपियों ने भी बहुत सहन किया।

यशोधरा

हाय! वे उनके लिए कितनी तरसीं। परन्तु मुझे विश्वास है, मैं अपने प्रभु के दर्शन अवश्य पाऊँगी।

गंगा

तुम्हें देखकर मुझे स्वामि-वंचिता शकुन्तला का स्मरण आता है। उनके पुत्र भरत की भाँति ही कुमार राहुल का अभ्युदय हो, यही हम सबकी कामना है।

यशोधरा

अहो! अभागिनी गोपा ही एक दुःखिनी नहीं है। उसकी पूज्य पूर्वजाओं ने भी बड़े दुःख उठाये हैं। उनके बल से मैं भी किसी प्रकार सह लूँगी गंगा!

गौतमी

निर्दयी पुरुषों के पाले पड़कर हम अबलाजनों के भाग्य में रोना ही लिखा है।

यशोधरा

अरी, तू उन्हें निर्दय कैसे कहती है? वे तो किसी कीट-पतंग का दुःख भी नहीं देख सकते।

गौतमी

तभी न हम लोगों को इतना सुख दे गये हैं?

यशोधरा

नहीं, वे अपने दुःख का भागी बनाकर हमें अपना सच्चा आत्मीय सिद्ध कर गये हैं और हम सबके सच्चे सुख की खोज में ही गये हैं।

गौतमी

देवि, तुम कुछ भी कहो, परन्तु मैं तो यही कहूँगी कि ऐसा सोने का घर छोड़कर उन्होंने वन की धूल ही छानी। जननी जन्मभूमि की भी उन्हें कुछ ममता न हुई।

यशोधरा

अरी, सदा माँ की गोद में ही बैठे रहने के लिए पुरुषों का जन्म नहीं होता। स्त्रियों को भी पति के घर जाना पड़ता है। सारा विश्व जिनका कुटुम्ब है, उन्हें जन्मभूमि का बन्धन कैसे बाँध सकता है?

गौतमी

कुमार राहुल कदाचित् विश्व से बाहर थे! मोह ममता तो ऐसों को क्या होगी, किन्तु उनके पालन-पोषण और उनकी शिक्षा-दीक्षा की देख-रेख करना भी क्या उनका कर्त्तव्य न था?

यशोधरा

हमको तो उस पर बड़ी ममता है। हम क्या इतना भी न कर सकेंगी? मैं कहती हूँ, राहुल के जन्म ने उन्हें अमृत की प्राप्ति के लिए और भी आतुर कर दिया। परन्तु अब इन बातों को रहने दे। वह आता होगा। मैं उसके सामने हँसती ही रहना चाहती हूँ। परन्तु बहुधा आँसू आ जाते हैं। इससे उसे कष्ट होता है। वह अब समझने लगा है।

गंगा

देवि, कुमार को देखकर ही धीरज धरना चाहिए।

यशोधरा

ठीक है, विपत्ति में जो रह जाय वही बहुत है। चित्रा, देख भोजन प्रस्तुत है। यहीं एक ओर उसके लिए आसन लगा। मैंने अपने हाथों उसके लिए कुछ खीर बनाई है। वह ठण्डी हुई या नहीं? और जो कुछ हो, आम रखना न भूलना।

चित्रा

जो आज्ञा।

(गयी)

यशोधरा

गंगा, तू दादाजी के यहाँ जाने योग्य उसकी वेश-भूषा ठीक कर।

(गंगा 'जो आज्ञा' कहकर जिस द्वार से जाती है उसी से राहुल अलिन्द में आता है। यशोधरा और गौतमी सामने से उसकी प्रतीक्षा कर रही हैं। परन्तु वह चुपके-चुपके उनके पीछे से आना चाहता है। सामने गंगा को देखकर मुँह पर अँगुली रखकर उससे चुप रहने का आग्रह करता है। गंगा मुस्करा कर चुप रहती है। राहुल सहसा पीछे से माँ के गले में हाथ डालकर पीठ पर पड़ जाता है और 'प्रणाम', 'प्रणाम' कहकर अपना मुँह बढ़ाकर माता के मुँह से लगाकर हँसता है)

यशोधरा

जीता रह, बेटा।

राहुल

मेरी जीत हो गयी। दादाजी से मैंने कहा था,—मेरे प्रणाम करने के पहले ही माँ मुझे आशीर्वाद दे देती है। उन्होंने कहा—तू प्रणाम करने में पिछड़ जाता है। इसीलिए आज मैंने पीछे से आकर पहले प्रणाम कर लिया! अब तू हार गयी न?

यशोधरा

वाह! मैं कैसे हार गयी! तूने छिपकर आक्रमण किया है। इसे मैं तेरी जीत नहीं मानती।

राहुल

क्यों नहीं मानती? प्रणाम करना क्या कोई प्रहार करना है जो सामने से ही किया जाय। अच्छे काम तो अज्ञात रूप से भी किये जाते हैं। यह तूने ही कहा था। नहीं कहा था?

यशोधरा

बेटा, अब मैं हार गयी।

राहुल

तू हार न मानती तो मैंने दूसरा उपाय भी सोच लिया था।

यशोधरा

सो क्या?

राहुल

मैं दूर ड्योढ़ी से ही, तुझे देखे बिना ही, 'माँ, प्रणाम', 'माँ प्रणाम', कहता हुआ आता।

यशोधरा

बेटा, इसकी आवश्यकता नहीं। मेरा आशीर्वाद तेरे प्रणाम की प्रतीक्षा थोड़े करता है।

राहुल

परन्तु मेरा विनय तो सदा गुरुजनों का आशीष चाहता है। दादाजी कहते हैं, शिष्टाचार के नियम की रक्षा होनी चाहिए। इस कारण मेरे प्रणाम करने पर ही तुझे आशीष देना चाहिए। नहीं माँ?

यशोधरा

अच्छी बात है, अब मैं तेरे प्रणाम करने पर ही मुँह से तुझे आशीष दिया करूँगी।

राहुल

मुँह से?

यशोधरा

मन से तो दिन-रात ही तेरा मंगल मनाती रहती हूँ।

राहुल

परन्तु माँ, मुझे तो कितने ही काम रहते हैं। मैं कैसे सर्वदा एक ही चिन्तन कर सकूँगा?

यशोधरा

बेटा, तेरे जितने शुभ संकल्प हैं वे सब मेरी ही पूजा के साधन हैं। तू उपवन में घूम आया।

राहुल

हाँ, माँ, मैंने जो आम के पौधे रोपे थे उनमें नयी कोंपलें निकली हैं—बड़ी सुन्दर, लाल लाल!

यशोधरा

जैसी तेरी अँगुलियाँ!

राहुल

मेरी अँगुलियाँ तो धनुष की प्रत्यंचा भी खींच लेती हैं। वे हाथ लगते ही कुम्हला कर तेरे होठों से होड़ करने लगेंगी।

गौतमी

कुमार तो कविता करने लगे हैं!

राहुल

गौतमी, इसी को न कविता कहते हैं—

खान-पान तो दो ही धन्य,
आम और अम्बा का स्तन्य!

गौतमी

धन्य, धन्य! परन्तु ये तो दो दो पद हुए?

राहुल

मेरा छन्द क्या चौपाया है? क्यों माँ!

यशोधरा

ठीक कहा बेटा!

गौतमी

भगवान करे, तुम कवि होने के साथ साथ कविता के विषय भी हो जाओ।

राहुल

माँ, कविता का विषय कैसे हुआ जाता है?

यशोधरा

बेटा, कोई विशेषता धारण करके।

राहुल

परन्तु माँ, मुझे तो किसी काम में विशेषता नहीं जान पड़ती। सब बातें साधारणतः यथानियम होती दिखाई पड़ती हैं। हाँ, एक तेरे रोने को छोड़कर! तू हँस पड़ी, यह और भी विचित्र है!

यशोधरा

अच्छा, बेटा, अब भोजन कर। गौतमी थाली मँगा।

(गौतमी 'जो आज्ञा' कहकर गयी)

राहुल

माँ, मेरे साथ तू भी खा।

यशोधरा

बेटा, मैं पीछे खा लूँगी।

राहुल

दादाजी मुझसे कहते थे—तू माँ को खिलाये बिना खा लेता है। मुझे बड़ी लज्जा आयी।

यशोधरा

मैं क्या भूखी रहती हूँ? उचित तो यह होगा कि तू दादाजी को साथ लेकर ही यहाँ भोजन किया कर।

राहुल

यह अच्छी रही! दादाजी तेरे लिए कहते हैं और तू दादाजी के लिए कहती है। यह भी कविता का एक विषय मुझे मिल गया। अच्छा, कल से दो बार तेरे साथ खाया करूँगा और दो बार दादाजी के साथ। आज तो तू मेरे साथ बैठ। नहीं तो मैं भी नहीं खाऊँगा।

यशोधरा

बेटा, हठ नहीं करते। मेरी तृप्ति तभी होती है जब मैं सबको खिला कर खाऊँ।

राहुल

तू खा लेगी तो क्या फिर कोई खायगा नहीं?

यशोधरा

परन्तु मेरे लिए यह उचित नहीं कि जिनका भार मुझ पर है उन्हें छोड़कर मैं पहले खा लूँ।

राहुल

तो क्या मुझ पर किसी का भार नहीं?

यशोधरा

बेटा, तू अभी छोटा है।

राहुल

मैं छोटा हूँ तो क्या? बल तो मुझमें तुझसे अधिक है! चाहे परीक्षा करके देख ले। मैं घोड़े पर जमकर बैठने लगा हूँ, व्यायाम करता हूँ, शस्त्र चलाना सीखता हूँ। मेरा बाण जितनी दूर जाता है मेरे किसी भी समवयस्क का उतनी दूर नहीं जा सकता। तू तो मेरे साथ दो डग दौड़ भी नहीं सकती।

यशोधरा

फिर भी बेटा, मैं तुझसे बड़ी हूँ।

राहुल

मैं बड़ा होता तो?

यशोधरा

तो मेरा भार तुझ पर होता।

राहुल

परन्तु मैं तो सदा तुझसे छोटा ही रहूँगा माँ! अच्छा, पिताजी तो बड़े हैं। वे क्यों हमारी सुध नहीं लेते?

यशोधरा

लेंगे बेटा लेंगे। तब तक तेरा भार मुझे दे गये हैं।

राहुल

और तेरा भार किसे दे गये हैं, दादाजी को?

यशोधरा

हाँ बेटा, दादाजी को।

राहुल

और दादाजी का भार?

यशोधरा

बेटा, पुरुषों के लिए स्वालम्बी होना ही उचित है। दूसरों का भार बनना अपने पौरुष का अनादर करना है। यों तो सबका भार भगवान् पर है। परन्तु मेरे लिए तो मेरे स्वामी ही भगवान् हैं और तेरे लिए तेरे गुरुजन ही।

राहुल

तू ठीक कहती है। मैंने भी पढ़ा है—मातृदेवो भव, पितृदेवो भव। इसी के साथ

माँ, आचार्यदेवो भव भी है।

यशोधरा

ठीक ही तो है बेटा। माता-पिता जन्म देते हैं, परन्तु सफल उसे आचार्य देव ही बनाते हैं। हमें क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए, वही इसे बताते हैं।

राहुल

सचमुच वे बड़ी बड़ी बातें बताते हैं। आकाश तो मुझे भी गोल गोल दिखाई देता है। वे कहते हैं धरती भी गोल है। वे मुझको उसकी सब बातें बतायँगे।

यशोधरा

क्यों नहीं बतायँगे बेटा।

राहुल

परन्तु मेरा एक सहपाठी तो उनसे ऐसा डरता है मानो वे देव न होकर कोई दानव हों!

यशोधरा

वह अपना पाठ पढ़ने में कच्चा होगा।

राहुल

तूने कैसे जान लिया?

यशोधरा

यह क्या कठिन है। ऐसे ही लड़के गुरुजनों के सामने जाने से जी चुराते हैं।

राहुल

माँ, मैं तो एक दो बार सुनकर ही कोई बात नहीं भूलता। तू चाहे मेरी परीक्षा ले ले।

यशोधरा

तेरे पूर्वजन्म का संस्कार है। तू उस जन्म में पण्डित रहा होगा, इसलिए इस जन्म में तुझे सहज ही विद्या प्राप्त हो रही है।

राहुल

ऐसी बात है?

यशोधरा

हाँ, बेटा, इस जन्म के अच्छे कर्म उस जन्म में साथ देते हैं।

राहुल

और बुरे कर्म?

यशोधरा

वे भी।

राहुल

तो एक बार बुरे कर्म करने से फिर उनसे पिंड छूटना कठिन है?

यशोधरा

यही बात है बेटा।

राहुल

तो मैं आचार्य देव से कहकर बुरे कर्मों की एक तालिका बनवा लूँगा, जिससे उनसे बचता रहूँ।

यशोधरा

अच्छा तो यह होगा कि तू अच्छे कर्मों की सूची बनवा ले।

राहुल

अच्छी बातें तो वे पढ़ाते ही हैं।

यशोधरा

तब उन्हीं को स्मरण रखना चाहिए। बुरी बातों का स्मरण भी बुरा।

(थाली आती है)

राहुल

तब एक ओर मुझे अज्ञ भी बनना पड़ेगा, जैसे आज असमर्थ बनना पड़ा है।

यशोधरा

सो कैसे?

राहुल

आज व्यायामशाला में कूदने के लिए बढ़ाकर एक नयी सीमा निर्धारित की गयी। मेरे साथियों में से कोई भी वहाँ तक नहीं उड़ सका। मैं कूद सकता था। परन्तु सबका मन रखने के लिए समर्थ होते हुए भी, मैं वहाँ तक नहीं गया। कल ही मैंने पढ़ा था—आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

यशोधरा

बड़ा अच्छा पाठ पढ़ा है तूने बेटा। परन्तु उसका उपयोग ठीक नहीं हुआ। तेरा कोई साथी तुझसे अधिक योग्यता दिखावे तो क्या इसे अपने प्रतिकूल समझना चाहिए? नहीं यह तो अपने लिए उत्साह की बात होनी चाहिए। हमारे सामने जो आदर्श हों, हमें उनसे भी आगे जाने का उद्योग करना उचित है। इसी प्रकार हमारा उदाहरण देखकर दूसरों को भी साहस दिखाना चाहिए। नहीं तो वे भी उन्नति न कर सकेंगे और तेरी बलबुद्धि भी विकसित न हो सकेगी।

राहुल

ऐसी बात है! तब तो बड़ी भूल हुई माँ।

यशोधरा

परन्तु तेरी भूल में भी सद्भावना थी, इससे मुझे सन्तोष ही है।

गौतमी

माँ-बेटे बातों में ही भूल गये। थाली ठण्डी हो रही है। उसका ध्यान ही नहीं।

यशोधरा

सचमुच! बेटा, अब भोजन कर।

राहुल

भूख तो मुझे भी लगी थी, पर तेरी बातों में भूल गया। चलो, अच्छा ही हुआ। दादाजी को सुनाने के लिए बहुत-सी बातें मिल गयीं। तूने भी कहा था, टहलने के पीछे कुछ विश्राम करके ही खाना ठीक होता है।

(भोजन करने बैठता है)

यशोधरा

(अंचल झलती हुई)

अच्छा, अब खा, मैं चुप रहूँगी।

राहुल

तब तो मैं खा ही न सकूँगा।

यशोधरा

जैसे तुझे रुचे वैसे ही सही।

(गंगा मूल्यवान वस्त्राभूषण लाती है।)

राहुल

आहा! खीर बड़ी स्वादिष्ट है। माँ, तू नहीं खाती तो चखकर ही देख।

यशोधरा

बेटा, मैं खीर नहीं खाती।

राहुल

मोतीचूर।

यशोधरा

वह भी नहीं।

राहुल

दाल-भात, श्रीखण्ड, पापड़, दही-बड़े तुझे कुछ नहीं भाते?

यशोधरा

बेटा, मैं व्रत करती हूँ, फल और दूध ही मेरे लिए यथेष्ट हैं।

राहुल

तू बड़ी अरसज्ञ है! मैं दादाजी से कहूँगा।

यशोधरा

नहीं बेटा, ऐसा न करना। उन्हें व्यर्थ कष्ट होगा।

राहुल

अच्छा, तू उपवास क्यों करती है?

यशोधरा

मेरे धर्म का यह एक अंग है।

राहुल

मेरे लिए यह धर्म कठिन पड़ेगा!

यशोधरा

तुझे इसकी आवश्यकता नहीं।

राहुल

क्यों?

यशोधरा

धर्म की व्यवस्था भी अवस्था के अनुसार होती है। तू अभी छोटा है। बच्चों

के व्रत उनकी माताएँ ही पूरे किया करती हैं।

राहुल

यह ले, मैं तृप्त हो गया। चित्रा, हाथ धुला और थाली ले जा।

यशोधरा

अरे, अभी खाया ही क्या है?

राहुल

और कितना खाऊँ? मैं क्या बड़ा हूँ?

यशोधरा

हूँ, इसी के लिए तू छोटा है। जैसी तेरी रुचि।

(राहुल हाथ-मुँह धोता है)

आ, अब दादाजी के यहाँ जाने योग्य वेश-भूषा बना ले।

राहुल

क्यों माँ, यह वस्त्र क्या बुरे हैं? तू फटे-पुराने पहने और मैं सुवर्ण-खचित पहनूँ? मैं नहीं पहनूँगा। मेरे यही घूमने-फिरने और खेलने के वस्त्र क्या तेरे काषाय-वस्त्रों से भी गये-बीते हैं?

यशोधरा

बेटा, मैं काषाय वस्त्र पहने क्या तुझे भली नहीं जान पड़ती?

राहुल

नहीं, माँ, इनसे तेरा गौरव ही प्रकट होता है। फिर भी मन न जाने कैसा हो जाता है—कभी कभी। तू इतना कठिन तप क्यों करती है?

यशोधरा

तप ही मनुष्यत्व है बेटा!

राहुल

मैं कब तप करूँगा?

यशोधरा

जब अपने पिता की भाँति पिता बन जायगा। मैं तो यही जानती हूँ। आगे तेरे पिता जानें।

राहुल

माँ, पिताजी की बात आने से तुझे कष्ट होता है। इसलिए मैं उनकी चर्चा ठीक नहीं समझता।

यशोधरा

बेटा, उन्हीं की चिन्ता करके तो मैं जी रही हूँ। तू इच्छानुसार जो कहना हो, कह।

राहुल

अच्छा, मेरे ये वस्त्र क्या तुझे नहीं भाते? साधारण वस्त्रों में तेरा असाधारण महत्त्व देखकर मुझे भी रत्न-खचित वेश-भूषा छोड़कर साधारण वस्त्रों का ही लोभ होता है।

यशोधरा

परन्तु तेरी राजोचित वेश-भूषा से तेरे दादाजी को सन्तोष होता है। उनकी प्रसन्नता के लिए तुझे यह त्याग करना ही चाहिए।

राहुल

त्याग सचमुच त्याग ही है। अच्छा, पिता–

यशोधरा

कह बेटा, कह।

राहुल

क्या पिताजी भी ऐसी ही वेशभूषा धारण करते थे?

यशोधरा

क्यों नहीं।

राहुल

परन्तु तेरे सिरहाने उनका जो चित्र रहता है वह तो साधु-संन्यासी के रूप में ही है।

यशोधरा

उसे मैंने उनकी अब की अवस्था की कल्पना करके बनाया है।

राहुल

उनका कोई राजवेश का चित्र नहीं है?

यशोधरा

क्यों न होगा।

राहुल

तो मुझे दिखा।

यशोधरा

गौतमी है कोई चित्र?

गौतमी

वह अशोकोत्सव वाला?

यशोधरा

वही ला।

(गौतमी जाती है)

राहुल

माँ, पहले तू भी ऐसे वस्त्राभूषण पहनती होगी?

यशोधरा

बेटा, कौन-सा राज-वैभव है जो तेरी माँ ने नहीं भोगा?

राहुल

अब केवल माथे पर लाल लाल बिन्दी ही मुझे अच्छी लगती है?

यशोधरा

बेटा, यही मेरे सुख-सौभाग्य का चिह्न है।

राहुल

ऐसी ही बिन्दी मुझे भी लगा दे।

यशोधरा

तेरे लिए केसर, कस्तूरी, गौरोचन और चन्दन ही उपयुक्त है। रोली और अक्षत पूजा के समय लगाऊँगी।

(गौतमी आती है)

गौतमी

कुमार, लो यह देखो पिताजी का चित्र।

राहुल

ओहो! कहाँ यह राजसी वेश-विन्यास और कहाँ वह संन्यास! परन्तु मुख पर दोनों स्थानों में प्रायः एक ही भाव है। अवस्था में अवश्य कुछ अन्तर है। माँ, सौम्य और साधु भाव में क्या विशेष अन्तर है?

यशोधरा

कोई अन्तर नहीं बेटा!

गंगा

कुमार, कैसा है यह रूप?

राहुल

मेरे जैसा! एक बार दादीजी मुझे देखकर चौंक पड़ीं और बोलीं मुझे ऐसा जान पड़ा, मानों वही आ गया! मैंने भी दर्पण में अपना मुख देखा है। क्यों माँ?

यशोधरा

बेटा, तू ठीक कहता है। अरे मेरी आँखों में यह क्या आ पड़ा?

राहुल

निकल गया माँ? तेरा अंचल तो भीग गया। अरे, यह तो देख! पिता के पास ही यह कौन खड़ी है? वे उसे मरकत की माला उतार कर दे रहे हैं। वह हाथ बढ़ाकर भी संकुचित-सी हो रही है। सिर नीचा है, फिर भी अधखुली आँखें उन्हीं की ओर लगी हैं, माँ, यह कौन है?

गौतमी

कुमार, तुम नहीं समझे?

राहुल

अब ध्यान से देखकर समझ गया। माँ की छोटी बहन मेरी कौन होती हैं?

गौतमी

मौसी।

राहुल

तो ये मेरी मौसी हैं। मुख माँ के मुख से मिलता है। इतना गौरव नहीं है परन्तु सरलता ऐसी ही है। क्यों माँ हैं न मौसी ही?

गौतमी

कुमार, माँ की आँखें अब भी किरकिरा रही हैं। मैं तुम्हें बता दूँ। यह इन्हीं का चित्र है।

राहुल

ओहो! इतना परिवर्तन!

यशोधरा

बेटा, बुरा या भला?

राहुल

माँ, यह मैं पहले ही कह चुका हूँ। तेरे इस परिवर्तन में तेरा गौरव ही प्रकट हुआ है। यह मूर्ति सुख में भी संकुचित-सी है और तू दुःखिनी होकर भी गौरवशालिनी। यह पवित्र है, तू पावन। क्या इस अवस्था के परिवर्तन पर तुझे खेद है?

यशोधरा

बेटा, तुझे सन्तोष हो तो मुझे कोई खेद नहीं।

राहुल

बस, पिताजी, आ जायँ, तो मुझे पूरा सन्तोष है।

यशोधरा

तूने मेरे मन की बात कही बेटा।

राहुल

तब आज मुझे वही माला पहना दे जो पिताजी ने तुझे दी थी।

यशोधरा

मैंने उसे तेरी बहू के लिए रख छोड़ा था। यह भी अच्छा है, उसे वह तेरे ही हाथों पायगी। गौतमी, ले आ।

(गौतमी जाती है)

राहुल

मेरी बहू की तुझे बड़ी चिन्ता है। इससे मुझे ईर्ष्या होती है।

यशोधरा

क्यों बेटा?

राहुल

वह आकर मेरे और तेरे बीच में खड़ी हो जायगी, इसे मैं सहन नहीं कर सकता।

यशोधरा

मेरी दो जाँघें हैं, एक पर तू बैठेगा, दूसरी पर वह बैठेगी।

राहुल

परन्तु जिस जाँघ पर मैं बैठना चाहूँगा उसी पर वह बैठना चाहेगी तो झगड़ा न मचेगा?

यशोधरा

मैं उसे समझा लूँगी।

राहुल

काहे से समझा लेगी? मुँह तो तेरे एक ही है। वह मेरे भाग में है। उससे मैं तुझे बहू के साथ बात करने दूँगा तब न?

यशोधरा

इतना बड़ा स्वार्थी होगा तू?

राहुल

इसमें स्वार्थ की क्या बात है माँ, यह तो स्वत्व की बात है।

गंगा

परन्तु, कुमार अधिकार क्या अकेले ही भोगा जाता है?

राहुल

तुम भी माँ की ओर मिल गयी हो!

गौतमी

(आ कर)

कुमार, मैं तुम्हारी ओर हूँ। समय आवे तब देख लेना। अभी से क्या झगड़ा। लो, यह मरकत की माला।

राहुल

(पहन कर)

अरे! यह तो मुझे बड़ी बैठी।

(उतार कर)

माँ, एक बार तू ही इसे पहन।

यशोधरा

बेटा, मैं?

राहुल

इस हँसी से तो तेरा रोना ही भला! पहन माँ, मैं देखूँगा।

गौतमी

देवि, माथे पर सिन्दूर-बिन्दु धारण करती हुई किस विचार से तुम कुमार की इच्छा पूरी करने में असमंजस करती हो? जो ऐसा करने से तुम्हें रोकता है वह धर्म नहीं, अधर्म है।

यशोधरा

पहना दे बेटा!

राहुल

(पहना कर)

अहा हा! यह राजयोग है। चित्रा, दर्पण तो लाना।

यशोधरा

रहने दे बेटा, तू ही मेरा दर्पण है। अरे, यह विचित्रा क्या लाई?

विचित्रा

जय हो देवि, महाराज ने कुमार के लिए यह वीणा भेजी है, और पूछा है, वे कब तक आते हैं?

राहुल

वे क्या कर रहे हैं?

विचित्रा

कुमार, महाराज अभी सन्ध्या करने के लिए उठे हैं।

राहुल

जब तक वे सन्ध्या से निवृत्त हों, मैं पहुँचता हूँ।

विचित्रा

जो आज्ञा।

(गयी)

राहुल

माँ, दादाजी ने मुझसे कहा था, तू बड़ा अच्छा बजाती है। तू ही मुझे वीणा सिखाया कर। इसी से दादाजी ने मेरे लिए यह वीणा बनने की आज्ञा दी थी।

यशोधरा

बेटा, मैं तो सब भूल गयी। परन्तु वीणा है सुन्दर।

राहुल

इसी से अपने आप तेरी अँगुलियाँ इसे छेड़ने लगीं! कैसी बोलती है यह?

यशोधरा

अच्छी—तेरे योग्य।

राहुल

माँ, तनिक इसे बजाकर कुछ गा।

यशोधरा

बेटा, यह छोटी है।

गंगा

कुमार, परन्तु स्वर दे सकेगी। गाने के लिए इतना ही पर्याप्त है।

यशोधरा

अरी, यह यों ही हठी है, ऊपर से इसे तुम और भी उकसा रही हो।

राहुल

माँ, अपनी इच्छा से तू रोती-गाती है। मैं कहता हूँ तो मुझे हठी बताती है। यही सही। तू न गायगी तो मैं रोने लगूँगा।

(हँसता है)

यशोधरा

गाती हूँ बेटा, उनके लिए रो रही हूँ तो तेरे लिए गाऊँगी क्यों नहीं?

(गान)

रुदन का हँसना ही तो गान।
गा गा कर रोती है मेरी हृत्तन्त्री की तान।

मीड़-मसक है कसक हमारी, और गमक है हूक;
चातक की हुत-हृदय हूति जो, सो कोइल की कूक।
राग हैं सब मूर्च्छित आह्वान।
रुदन का हँसना ही तो गान।

छेड़ो न वे लता के छाले, उड़ जावेगी धूल,
हलके हाथों प्रभु के अर्पण कर दो उसके फूल,
गन्ध है जिनका जीवन-दान।
रुदन का हँसना ही तो गान।

कादम्बिनी-प्रसव की पीड़ा हँसी तनिक उस ओर,
क्षिति का छोर छू गयी सहसा वह बिजली की कोर!
उजलती है जलती मुसकान,
रुदन का हँसना ही तो गान।

यदि उमंग भरता न अद्रि के ओ तू अन्तर्दाह,
तो कल कल कर कहाँ निकलता निर्मल सलिल-प्रवाह?
सुलभ कर सबको मज्जन-पान।
रुदन का हँसना ही तो गान।

पर गोपा के भाग्य-भाल का उलट गया वह इन्दु,
टपकाता है अमृत छोड़कर ये खारी जल बिन्दु!
कौन लेगा इनको भगवान?
रुदन का हँसना ही तो गान।

राहुल

माँ, माँ, रुलाई आती है। ये गंगा, गौतमी और चित्रा सभी तो रो रही हैं।

यशोधरा

बेटा, बेटा, आ मेरी छाती से लग जा।

(वलपूर्वक भेटती है)

राहुल

ओह! ओह!

गौतमी

छोड़ दो, छोड़ दो देवि, कुमार को। यह क्या करती हो?

(यशोधरा भुजपाश ढीला करती है)

राहुल

आह! प्राण बचे। मैं तो तुझे सर्वथा दुर्बल समझता था। परन्तु तूने पागल की भाँति इतने बल से मुझे दबाया कि मेरी साँस रुकने लगी माँ! हाथ जोड़े मैंने तेरे छाती से लगने को! फिर भी तू रोती है? रोना मुझे चाहिए या तुझे?

यशोधरा

बेटा, मैं तुझे हँसता ही देखूँ।

राहुल

अच्छा, रात को कहानी कहेगी न?

यशोधरा

कहूँगी।

राहुल

मेरी जीत! जाऊँ तो झटपट दादाजी के यहाँ हो आऊँ।



6

राहुल

अम्ब, मन करता है, पत्र लिखूँ तात को।

यशोधरा

क्या लिखेगा बेटा, सुनूँ मैं भी उस बात को?

राहुल

मैं लिखूँगा—तात, तुम तपते हो वन में,
हम हैं तुम्हारा नाम जपते भवन में।
आओ यहाँ, अथवा बुला लो हमको वहाँ।

यशोधरा

किन्तु बेटा, कौन जाने तेरे तात हैं कहाँ?

राहुल

वे हैं वहाँ अम्ब, जहाँ चाहे और सब है,
किन्तु सोच, ऐसी धृति ऐसी स्मृति कब है?
ऐसा ठौर होगा कहाँ, जो सुध भुला दे माँ,
जागते ही जागते जो हमको सुला दे माँ?

यशोधरा

ऐसा ठौर हो तो वह बेटा, तुझे भायगा?

राहुल

अम्ब, नहीं; ध्यान वहाँ तेरा भी न आयगा,
मानता हूँ, वेदना ही बजती है ध्यान में,
किन्तु एक सुख भी तो रहता है ज्ञान में।

यशोधरा

तो भी तात होंगे वहाँ।

राहुल

वे क्या मुझे मानेंगे?
विस्मृति के बीच कह, कैसे पहचानेंगे?
ऐसी युक्ति हो जो वही आप यहाँ आ जावें,
जानें-पहचानें हमें हम उन्हें पा जावें।

यशोधरा

बेटा, यही होगा, यही होगा, धैर्य धर तू,
शक्ति और भक्ति निज भावना में भर तू।

7

राहुल

अम्ब, पिता आयँगे तो उनसे न बोलूँगा,
और संग उनके न खेलूँगा न डोलूँगा।

यशोधरा

बेटा, क्यों?

राहुल

गये वे अम्ब, क्यों कुछ बिना कहे?
हम सबने ये दुःख जिससे यहाँ सहे।

यशोधरा

अविनय होगा किन्तु बेटा, क्या न इससे?

राहुल

अविनय? कैसे भला, किस पर, किससे?
अम्ब, क्या उन्होंने आप अनय नहीं किया?
तुझको रुला कर अजाना पथ है लिया।

यशोधरा

किन्तु कोई अनय करे तो हम क्यों करें?

राहुल

और नहीं माथे पर क्या हम उसे धरें?

यशोधरा

बेटा, इसे छोड़ और अपना क्या बस है?

राहुल

न्याय तो सभी के लिए अम्ब, एक रस है।

यशोधरा

न्याय से वे पालन ही करने को बाध्य हैं?
लालन करें या नहीं?

राहुल

फिर भी क्या साध्य हैं?
प्रेमशून्य पालन क्यों चाहें हम उनका?

यशोधरा

किन्तु क्या किसी पर है प्रेम कम उनका?

राहुल

अम्ब, फिर तू क्यों यहाँ रह रह रोती है?

यशोधरा

बेटा रे, प्रसव की-सी पीड़ा मुझे होती है।

राहुल

इससे क्या होगा अम्ब?

यशोधरा

बेटा, वृद्धि उनकी,
बहन बनेगी वही तेरी, सिद्धि उनकी।

8

राहुल

अम्ब, दमयन्ती की कहानी मुझे भाई है,
और एक बात मेरे ध्यान में समाई है।
तू भी एक हंस को बना के दूत भेज दे,
जो सन्देश देना हो उसी को तू सहेज दे।

यशोधरा

बेटा, भला वैसा हंस पा सकूँगी मैं कहाँ?

राहुल

हंस न हो, मेरा धीर कीर तो पला यहाँ।

यशोधरा

किन्तु नहीं सूझता है, उनसे मैं क्या कहूँ?

राहुल

पूछ यही बात—"और कब तक मैं सहूँ?"

यशोधरा

"सिद्धि मिलने तक" कहेंगे क्या न वे यही?

राहुल

तो क्या सिद्धि मिलने का एक थल है वही?

यशोधरा

बेटा, यहाँ विघ्न, उन्हें हम सब घेरेंगे।

राहुल

किन्तु धीर हैं तो अम्ब, वे क्यों ध्यान फेरेंगे?
वन में तो इन्द्र भी प्रलोभन दिखायगा,
विश्वामित्र-तुल्य उन्हें क्या वह न भायगा?
मुझको तो उसमें भी लाभ दृष्टि आता है–
भगिनी शकुन्तला-सी, राहुल-सा भ्राता है!
मेनका तो वंचिका थी, तू फिर भी उनकी;
और रहो चाहे जहाँ, सिद्धि तो है धुन की।
तेरी गाद में ही अम्ब, मैंने सब पाया है,
ब्रह्म भी मिलेगा कल, आज मिली माया है।

9

राहुल

ऐसे गिरि, ऐसे वन, ऐसी नदी, ऐसे कूल,
ऐसा जल, ऐसे थल, ऐसे फल, ऐसे फूल,
ऐसे खग, ऐसे मृग, होंगे अम्ब, क्या वहाँ,
करते निवास होंगे एकाकी पिता जहाँ?

यशोधरा

बेटा, इस विश्व में नहीं है एकदेशता,
होती कहीं एक, कहीं दूसरी विशेषता।
मधुर बनाता सब वस्तुओं को नाता है,
भाता वहीं उसको, जहाँ जो जन्म पाता है।

राहुल

अम्ब, क्या पिता ने यहीं जन्म नहीं पाया है?
क्यों स्वदेश छोड़, परदेश उन्हें भाया है?

यशोधरा

बेटा, घर छोड़ वे गये हैं अन्य दृष्टि से,
जोड़ लिया नाता है उन्होंने सब सृष्टि से।
हृदय विशाल और उनका उदार है,
विश्व को बनाना चाहता जो परिवार है।

राहुल

लाभ इससे क्या अम्ब, अपनों को छोड़ के,
बैठ जायँ दूसरों से वे सम्बन्ध जोड़ के?

यशोधरा

अपनों को छोड़ के क्यों बैठ भला जायँगे?
अपनों के जैसा ही सभी का प्रेम पायँगे।

राहुल

माँ, क्या सब ओर होगा अपना ही अपना?
तब तो उचित ही है तात का यों तपना।

यशोधरा

1

निज बन्धन को सम्बन्ध सयत्न बनाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

जाना चाहे यदि जन्म भले ही जावे,
आना चाहे तो स्वयं मृत्यु भी आवे,
पाना चाहे तो मुझे मुक्ति ही पावे,
मेरा तो सब कुछ वही, मुझे जो भावे।
मैं मिलन-शून्य में विरह घटा-सी छाऊँ!
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

माना, ये खिलते फूल सभी झड़ते हैं;
जाना, ये दाड़िम आम सभी सड़ते हैं।
पर क्या यों ही ये कभी टूट पड़ते हैं?
या काँटे ही चिरकाल हमें गड़ते हैं?
मैं विफल तभी, जब बीज-रहित हो जाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

यदि हममें अपना नियम और शम-दम है,
तो लाख व्याधियाँ रहें स्वस्थता सम है।
वह जरा एक विश्रान्ति, जहाँ संयम है;
नवजीवन-दाता मरण कहाँ निर्मम है?
भव भावे मुझको और उसे मैं भाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

आकर पूछेंगे जरा-मरण यदि हमसे,
शैशव-यौवन की बात व्यंग्य विभ्रम से,
हे नाथ, बात भी मैं न करूँगी यम से,
देखूँगी अपनी परम्परा को क्रम से।
भावी पीढ़ी में आत्मरूप अपनाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

ये चन्द्र-सूर्य निर्वाण नहीं पाते हैं;
ओझल हो होकर हमें दृष्टि आते हैं।
झोंके समीर के झूम झूम जाते हैं;
जा जा कर नीरद नया नीर लाते हैं।
तो क्यों जा जा कर लौट न मैं भी आऊँ?
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

रस एक मधुर ही नहीं, अनेक विदित हैं,
कुछ स्वादु हेतु, कुछ पथ्य हेतु समुचित हैं।
भोगें इन्द्रिय, जो भोग विधान-विहित हैं;
अपने को जीता जहाँ, वहीं सब जित हैं।
निज कर्मों की ही कुशल सदैव मनाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

होता सुख का क्या मूल्य, जो न दुख रहता?
प्रिय-हृदय सदय हो तपस्ताप क्यों सहता?
मेरे नयनों से नीर न यदि यह बहता,
तो शुष्क प्रेम की बात कौन फिर कहता।
रह दुःख! प्रेम परमार्थ दया मैं लाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

आओ प्रिय! भव में भाव-विभाव भरें हम,
डूबेंगे नहीं कदापि, तरें न तरें हम।
कैवल्य-काम भी काम, स्वधर्म धरें हम,
संसार-हेतु शत बार सहर्ष मरें हम।
तुम, सुनो क्षेम से, प्रेम-गीत मैं गाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

2

मेरा मरण तुमको खला।
किन्तु मैं लेकर करूँ क्या विरह-जीवन जला?
लौट आओ प्रिय, तुम्हारा पुण्य फूला-फला,
भाग जो जिसका उसे दो जाय क्यों वह छला?
देख लूँ, जब तक जगूँ भव-नाट्य की नव कला,
और फिर सोऊँ तुम्हारी बाँह पर धर गला।
सब भला उसका भुवन में, अन्त जिसका भला;
जीव पहुँचेगा वहीं तो, वह जहाँ से चला।

3

मरने से बढ़कर यह जीना।
अप्रिय आशंकाएँ करना
भय खाना हा! आँसू पीना!
फिर भी बता, करे क्या आला,
यशोधरा है अवश-अधीना।
कहाँ जाय यह दीना-हीना,
उन चरणों में ही चिर लीना।

4

ओहो, कैसा था वह सपना!
देखा है रजनी में सजनी, मैंने उनका तपना।

दया भरी, पर शोणित सूखा,
वर्ण झाँवरा होकर रूखा,
पैठा पेट पीठ में भूखा,
आया मुझे विलपना!
ओहो, कैसा था वह सपना!

बहता वहाँ पास ही जल था,
किन्तु कहाँ जाने का बल था?
मन-सा तन भी पड़ा अचल था,
भार आप ही अपना!
ओहो, कैसा था वह सपना!

सहसा माँ भगिनी बन आईं,
स्वर्गवासिनी वे मनभाईं।
सुरसरि-जल अमृतोदन लाईं,
फिर भी मुझे कलपना।
ओहो, कैसा था वह सपना!

5

क्यों फड़क उठे ये वाम अंग?
ज्यों उड़ने के पहले विहंग!

किस शुभ घटना की रटना-सी
लगा रहा है अन्तरंग?
क्यों यह प्रकृति प्रसन्न हो उठी?
नहीं कहीं कुछ राग रंग।
उठती है अन्तर में कैसी
एक मिलन जैसी उमंग,
लहराती है रोम रोम में
अहा! अमृत की-सी तरंग!
पाना दुर्लभ नहीं, कठिन है
रख पाने का ही प्रसंग,
मिला मुझे क्या नहीं स्वप्न में
किन्तु हुआ वह स्वप्न भंग!
वंचक विधि ने लिया न हो सखि,
अब यह कोई और ढंग?
पर मेरा प्रत्यय तो फिर भी
है मेरे ही प्राण-संग।

6

गये हो तो यह ज्ञात रहे,
स्वामी! व्यर्थ न दिव्य देह वह
तप-वर्षा-हिम-वात सहे।

देखो, यह उत्तुंग हिमालय,
खड़ा, अचल योगी-सा निर्भय।
एक ओर हो यह विस्मयमय,
एक ओर वह गात रहे।
गये हो तो यह ज्ञात रहे।

बहे उधर गंगा की धारा,
इधर तुम्हारी गिरा अपारा।
प्लावित कर दे अग जग सारा,
हाँ, युग युग अवदात रहे।
गये हो तो यह ज्ञात रहे।

मुझे मिलोगे भला कहीं तो,
वहाँ सही, यदि यहाँ नहीं तो।
जहाँ सफलता, मुक्ति वहीं तो,
यशोधरा की बात रहे।
गये हो तो यह ज्ञात रहे।

7

ओ यतियों-व्रतियों के आश्रय,
अभय हिमालय! भूधर-भूप!
हम सतियों की ठण्डी ठण्डी
आहों के ओ उच्चस्तूप!
तू जितना ऊँचा, उतना ही
गहरा है यह जीवन-कूप,
किन्तु हमारे पानी का भी
होगा तू ही साक्षी-रूप।

8

चाहे तुम सम्बन्ध न मानो,
स्वामी! किन्तु न टूटेंगे ये, तुम कितना ही तानो।

पहले हो तुम यशोधरा के,
पीछे होगे किसी परा के,
मिथ्या भय हैं जन्म-जरा के,
इन्हें न उनमें सानो,
चाहे तुम सम्बन्ध न मानो।

देखूँ एकाकी क्या लोगे?
गोपा भी लेगी, तुम दोगे।
मेरे हो, तो मेरे होगे,
भूले हो, पहचानो।
चाहे तुम सम्बन्ध न मानो।

बधू सदा मैं अपने वर की,
पर क्या पूर्त्ति वासना भर की?
सावधान! हाँ, निज कुलधर की
जननी मुझको जानो।
चाहे तुम सम्बन्ध न मानो।

9

रोहिणि, हाय! यह वह तीर,
बैठते आकर जहाँ वे धर्मधन, ध्रुवधीर।

मैं लिये रहती विविध पक्वान्न भोजन, खीर,
वे चुगाते मीन, मृग, खग, हंस, केकी, कीर।

पालता है तात का व्रत आज राहुल वीर,
लो इसे जब तक न लौटें वे ललित-गम्भीर।

कुटिल गति भी गण्य तेरी, धन्य निर्मल नीर;
वार दूँ मैं इस झलक पर मंजु मुक्ता-हीर।

बह चली लोकार्थ ही तू पहन पावन चीर,
रह गया दो बूँद दे कर यह अशक्त शरीर!

राहुल-जननी

1

मुझे नदीश मान दे,
नदी, प्रदीप-दान ले।

तुझे और क्या दूँ? थोड़ा भी आज बहुत तू मान ले,
तम में विषम मार्ग का इसको तुच्छ सहायक जान ले।

मिलें कहीं मेरे प्रभु पथ में, तू उनका सन्धान ले,
तुझे कठिन क्या है यह, यदि तू अपने मन में ठान ले।

मेरे लिए तनिक चक्कर खा, नव यात्रा की तान ले,
घूम घूम कर, झूम झूम कर, थल थल का रस-पान ले।

कह देना इतना ही उनसे जब उनको पहचान ले—
''धाय तुम्हारे सुत की गोपा बैठी है बस ध्यान ले।''

2

''जल के जीव हैं माँ, मीन;
नयन तेरे मीन-से हैं, सजल भी क्यों दीन?

पद्मिनी-सी मधुर मृदु तू, किन्तु है क्यों छीन?
मन भरा है, किन्तु तन क्यों हो रहा रस-हीन?

अम्ब, तेरा स्तन्य पीकर हो गया मैं पीन,
दुग्ध-तन मुझमें, पिता में मुग्ध-मन है लीन?

हाय! क्या तू त्याग पर ही है यहाँ आसीन?
धिक् मुझे, कह क्या करूँ मैं? हूँ सदैव अधीन।''

''लाल, मेरे बाल, साले सुध मुझे प्राचीन,
भय नहीं, साहित्य तेरा प्राप्त नित्य नवीन।''

3

"मातः, मैं भी तो सुनूँ, कैसी है वह मुक्ति?"
"पुत्र, पिता से पूछना और उन्हीं से युक्ति।"

"तू केवल कन्थक कसवा दे, अम्ब, अभी चढ़ धाऊँ,
मुक्ति बड़ी या मेरी माता, पूछ पिता से आऊँ।

न रो, कहीं भी क्यों न रहें वे, ठहर, उन्हें धर लाऊँ,
नहीं चाहता मैं वह कुछ भी, जिसमें तुझे न पाऊँ।

कहाँ मिलेगी मुक्ति, बता तो, उसे जीतने जाऊँ,
बाँध न डालूँ इन चरणों में, तो राहुल न कहाऊँ।"

"बेटा, बेटा, नहीं जानती, मैं रोऊँ या गाऊँ,
आ, मेरे कन्धों पर चढ़ जा, तुझको भी न गँवाऊँ।"

4

“अम्ब, पिता के ध्यान में बिसरा तेरा ज्ञान;
भूल गयी तू आपको बस, उनको पहचान।

अपने को खोकर उन्हें खोज रही तू आज,
और आत्मरत हैं उधर वे तेरे अधिराज!

कहती है भगवान तू उनको बारंबार,
किन्तु उन्हें भगवान का आया कभी विचार?

सुध करके सुध खो रही तू उनकी छवि आँक;
वे तेरी इस मूर्ति को देखेंगे कब झाँक?

गाती है मेरे लिए, रोती उनके अर्थ;
हम दोनों के बीच तू पागल-सी असमर्थ!”

“रोना-गाना बस यही जीवन के दो अंग;
एक संग मैं ले रही दोनों का रस-रंग!”

5

सती शिवा-सी तपस्विनी माँ, देख दिवा यह आ रही,
भर गभीर निज शून्य स्वयं ही उसको तुझ-सी था रही!
सौध-शिखर पर स्वर्ण-वर्ण की आतप आभा भा रही,
ज्यों तेरे अंचल की छाया मेरे सिर पर छा रही!
ज्यों तेरी वरुनी यह आँसू, किरण तुहिन-कण पा रही,
शुचिस्नेह का केन्द्र-बिन्दु-सा आत्मतेज से ता रही!
शीतल-मन्द-पवन वन वन से सुरभि निरन्तर ला रही,
ज्यों अनुभूति अदृश्य तात की मुझमें-तुझमें धा रही!
रवि पर नलिनी की, पितृ-छवि पर मौन दृष्टि तब जा रही,
वहाँ अंक में मधुप, यहाँ मैं, गिरा एक गुण गा रही!

सन्धान

(एकान्त में यशोधरा)
(गान)

आओ हो वनवासी!
अब गृह-भार नहीं सह सकती
देव, तुम्हारी दासी।

राहुल पल कर जैसे तैसे,
करने लगा प्रश्न कुछ वैसे,
मैं अबोध, उत्तर दूँ कैसे?
वह मेरा विश्वासी,
आओ हो वनवासी!

उसे बताऊँ क्या, तुम आओ,
मुक्ति-युक्ति मुझसे सुन जाओ—
जन्म-मूल मातृत्व मिटाओ,
मिटे मरण-चौरासी!
आओ हो वनवासी!

सहे आज यह मान तितिक्षा,
क्षमा करो मेरी यह शिक्षा।
हमीं गृहस्थ जनों की भिक्षा,
पालेगी सन्यासी!
आओ हो वनवासी!

मुझको सोती छोड़ गये हो,
पीठ फेर मुँह मोड़ गये हो,
तुम्हीं जोड़कर तोड़ गये हो,
साधु विराग-विलासी!
आओ हो वनवासी!

जल में शतदल तुल्य सरसते
तुम घर रहते, हम न तरसते,
देखो, दो दो मेघ बरसते,
मैं प्यासी की प्यासी!
आओ हो वनवासी।

(गौतमी का प्रवेश)

गौतमी

मिल गया, मिल गया, मिल गया सहसा
उनका सन्धान आज, जिनके बिना यहाँ
खान-पान नीरस था, सोना बुरा स्वप्न था,
रोना ही रहा था हाय! जीवन मरण था।
तुम जड़ मूर्ति-सी भले ही स्तब्ध हो जाओ,
किन्तु नयी चेतना से अंग भरे पूरे हैं!
मैंने आज देखे अहा! अश्रु ऐसे होते हैं।
रुद्ध भी तुम्हारी गिरा जगती में गूँजी है,
देखो, यह सारी सृष्टि पुलकित हो गयी!
जै जै अत्रभवति! हमारे भाग्य जागे हैं।

यशोधरा

मेरे भाग्य? गौतमि, वे संसृति के साथ हैं।
आलि, उन्हें सिद्धि तो मिली है? जिसके लिए
राज-ऋद्धि-वृद्धि के सुखों से मुँह मोड़ के,
नाते जितने हैं जगती के, उन्हें तोड़ के,
इतना परिश्रम उन्होंने किया, साथ ही
सब कुछ मैंने लिया, अनुगति छोड़ के!

गौतमी

सिद्धियाँ तो उनके पदों पर प्रणत हैं,
स्वामी आज आनन्दाग्रगामी शुद्ध बुद्ध हैं;
तप तथा त्याग तथागत के सफल हैं।

यशोधरा

गोपा गर्विणी है आज, आली, मुझे भेट ले,
आँसू दे रही हूँ, कह और क्या अदेय है?

गौतमी

मुक्ति भी सुलभ आज, कोई अब माँगे क्या?

यशोधरा

"लाभ से ही लोभ", यह कैसी खरी बात है,
आली, कुछ और सुनने की चाह होती है।

गौतमी

कुछ व्यवसायी यहाँ आये हैं मगध से।
वे ही यह वृत्त लाये, लोचनों के ही नहीं,
श्रवणों के लाभ भी उन्होंने वहाँ पाये हैं।

यशोधरा

आलि, भला, ऐसा लाभ उनको यहाँ कहाँ?
किन्तु हम अपनी कृतज्ञता जनायँगे।
पहले मैं सुन लूँ, सुना तू, जो सुनाती थी।

गौतमी

वर्षों तक प्रभु ने तपस्या कर अन्त में
सारे विघ्न पार किये, मार को हरा दिया।
अप्सराएँ उनको भला क्या भुला सकतीं?
जिनकी यशोधरा-सी साध्वी यहाँ बैठी है।
और, उन्हें कौन भय व्याप सकता था, जो,
ऐसा घर छोड़ घोर निशि में चले गये?

यशोधरा

यदि यह सत्य है तो मैं भी कृतकृत्य हूँ,
आज सुख से भी निज दुःख मुझे प्यारा है।

बार बार बीच में जो बोल उठती हूँ मैं,
उसको क्षमा कर तू आली, साँस लेती हूँ,
हर्ष की अधिकता भी भार बन जाती है!
आगे कह उनसे भी प्यारा वृत उनका।

गौतमी

अचल समाधि रही, बाधाएँ बिला गयीं,
देवि, वह दिव्य दृष्टि पाकर ही वे उठे,
जिसमें समस्त लोक और तीनों काल भी
दर्पण में जैसे, उन्हें दीख पड़े; सृष्टि के
सारे भेद खुल गये, चेतन का, जड़ का,
कोई भी प्रकार-व्यवहार नहीं जा सका।
दुःख का निदान और उसकी चिकित्सा भी
ज्ञात हुई। जन्म तथा मृत्यु के रहस्य को
जान कर देव स्वयं जीवनमुक्त हो गये।
और, धर्मचक्र के प्रवर्त्तन के साथ ही,
दूसरों को भी वे मुक्ति-मार्ग में लगा रहे।

यशोधरा

जय हो, सदैव आर्यपुत्र की विजय हो।
उनके करुण-धर्म-संघ के शरण में
गोपा के लिए भी कहीं ठौर होगी या नहीं।
आली, उनकी जो दृष्टि सृष्टि-भेदिनी है, क्या
इस चिर किंकरी के ऊपर भी आयगी?
अब तक भी मैं यहाँ वंचिता ही क्यों रही?

गौतमी

किन्तु अब शीघ्र वह अवसर आवेगा,
जब, तुम उनके समीप बैठ उनसे,
विस्मय-विनोद से सुनोगी, जन्म जन्म की।
अपनी कथाएँ, और साथ साथ उनकी!

यशोधरा

सारी घटनाएँ वही जानें, किन्तु इतना
मैं भी भली-भाँति जानती हूँ, जन्म जन्म में

आली, मैं उन्हीं की रही, वे भी जन्म जन्म में
मेरे रहे, तब तो मैं उनकी, वे मेरे हैं।
अब इतना ही मुझे पूछना है उनसे—
जो कुछ उन्होंने उस जन्म में मुझे दिया,
उसको मैं अब भी चुका सकी हूँ या नहीं?

(दौड़ते हुए राहुल का प्रवेश)

राहुल

माँ, माँ, पिता प्राप्त हुए, देख तू ये दादाजी—
दादाजी-समेत हर्ष-विह्वल-से आ रहे!
अब तो न रोयगी तू? अब भी तू रोती है!

यशोधरा

बेटा, और क्या करूँ?

राहुल

बता दूँ? चल शीघ्र ही
हम सब आगे बढ़ आप उन्हें लावेंगे।

(नेपथ्य में)

बेटी! बहू!

यशोधरा

व्यग्र न हो राहुल! वे आ गये!

राहुल

मैं तो चला, अम्ब, सब वस्तुएँ सहेज लूँ,
जोड़ता रहा जो उन्हें देने को, दिखाने को।

(प्रस्थान)

गौतमी

मैं भी चलूँ, उत्सव के आयोजन में लगूँ।

(प्रस्थान)

(शुद्धोदन और महाप्रजावती का प्रवेश)

यशोधरा

तात, अम्ब, गोपा चरणों में नत होती है।

दोनों

अक्षय सुहाग तेरा! व्रत भी सफल है।

शुद्धोदन

सावित्री-समान तेरे पुण्य से ही उसको सिद्धि मिली।

महाप्रजावती

तेरा यह विषम वियोग भी धन्य हुआ!

शुद्धोदन

उसने अपूर्व योग पाया है।
गोपा और गौतम का नाम भी जगत में
गौरी और शंकर-सा गण्य तथा गेय हो!
अब क्यों विलम्ब किया जाय बेटी, शीघ्र तू
प्रस्तुत हो। यह रहा मगध, समीप ही,
उसके लिए तो हम जगती के पार भी
जाने को उपस्थित हैं और उसे पाने को
जीवन भी देने को समुद्यत हैं—सर्वदा!

यशोधरा

किन्तु तात! उनका निदेश बिना पाये मैं,
यह घर छोड़ कहाँ और कैसे जाऊँगी?

महाप्रजावती

हाय बहू, अब भी निदेश की अपेक्षा है?

शुद्धोदन

बेटी, इतना भी अधिकार क्या हमें नहीं?

यशोधरा

मुझको कहाँ है? मैं तुम्हारी नहीं, अपनी
बात कहती हूँ तात! गोपा हतभागिनी!

महाप्रजावती

गोपे, हम अबलाजनों के लिए इतना
तेज—नहीं, दर्प—नहीं, साहस क्या ठीक है?
स्वामी के समीप हमें जाने से स्वयं वही
रोक नहीं सकते हैं, स्वत्व आप अपना

त्यागकर बोल, भला तू क्या पायगी बहू?

यशोधरा

उनका अभीष्ट मात्र! और कुछ भी नहीं।
हाय अम्ब! आप मुझे छोड़कर वे गये,
जब उन्हें इष्ट होगा आप आके अथवा
मुझको बुलाके, चरणों में स्थान देंगे वे।

महाप्रजावती

बाधा कौन-सी है तुझे आज वहाँ जाने में?

यशोधरा

बाधा तो यही है, मुझे बाधा नहीं कोई भी!
विघ्न भी यही है, जहाँ जाने से जगत में
कोई मुझे रोक नहीं सकता है—धर्म से,
फिर भी जहाँ मैं, आप इच्छा रहते हुए,
जाने नहीं पाती! यदि पाती तो कभी यहाँ
बैठी रहती मैं? छान डालती धरित्री को।
सिंहनी-सी काननों में, योगिनी-सी शैलों में,
शफरी-सी जल में, विहंगिनी-सी व्योम में
जाती तभी और उन्हें खोज कर लाती मैं!
मेरा सुधा-सिन्धु मेरे सामने ही आज तो
लहरा रहा है, किन्तु पार पर मैं पड़ी
प्यासी मरती हूँ; हाय! इतना अभाग्य भी
भव में किसी का हुआ? कोई कहीं ज्ञाता हो,
तो मुझे बता दे हा! बता दे हा! बता दे हा!

(मूर्च्छा)

महाप्रजावती

मूर्च्छित है हाय! मेरी मानिनी यशोधरा।

(उपचार)

शुद्धोदन

बेटी, उठ, मैं भी तुझे छोड़ नहीं जाऊँगा।
तेरे अश्रु लेकर ही मुक्ति-मुक्ता छोड़ूँगा।
तेरे अर्थ ही तो मुझे उसकी अपेक्षा है।

गोपा-बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको!
जाओ, अरे, कोई उस निर्मम से यों कहो—
झूठे सब नाते सही, तू तो जीव मात्र का,
जीव-दया-भाव से ही हमको उबार जा!

यशोधरा

1

क्या देकर मैं तुमको लूँगी?
देते हो तुम मुक्ति जगत को,
प्रभो, तुम्हें मैं बन्धन दूँगी!

बाँध बद्ध ही तुम्हें न लाते,
तो क्या तुम इस भू पर आते?
निर्गुण के गुण गाते गाते,
हुई गभीर गिरा भी गूँगी,
क्या देकर मैं तुमको लूँगी!

पर मैं स्वागत-गान करूँगी,
पाद-पद्म-मधु-पान करूँगी,
इतना ही अभिमान करूँगी—
तुम होगे तो मैं भी हूँगी!
क्या देकर मैं तुमको लूँगी?

2

प्रिय, क्या भेंट धरूँगी मैं?
यह नश्वर तनु लेकर कैसे
स्वागत सिद्ध करूँगी मैं?

नश्वर तनु पर धूल! किन्तु हाँ, उन्हीं पदों की धूल,
कर्म-बीज जो रहें मूल में, उनके सब फल-फूल
अर्पण कर उबरूँगी मैं।
प्रिय, क्या भेंट धरूँगी मैं?

जीवन्मुक्त भाव से तुमने किया अमर-पद-लाभ,
पर उस अमरमूर्ति के आगे ओ मेरे अमिताभ!
सौ सौ बार मरूँगी मैं!
प्रिय, क्या भेंट धरूँगी मैं?

3

तुच्छ न समझो मुझको नाथ,
अमृत तुम्हारी अंजलि में तो भाजन मेरे हाथ।

तुल्य दृष्टि यदि तुमने पाई,
तो हममें ही सृष्टि समाई!
स्वयं स्वजनता में वह आई,
देकर हम स्वजनों का साथ।
तुच्छ न समझो मुझको नाथ।

ममता को लेकर ही समता,
ममता में है मेरी क्षमता,
फिर क्यों अब यह विरह विषमता?
क्यों अपेय इस पथ का पाथ?
तुच्छ न समझो मुझको नाथ।

4

देकर क्या पाऊँगी तुम्हें मैं, कहो, मेरे देव,
लेकर क्या सम्मुख तुम्हारे अहो! आऊँगी?
मानस में रस है परन्तु उसमें है क्षार,
बस में यही है बस आँखें भर लाऊँगी!
धव, तुम उद्भव-समान यदि आये यहाँ,
एक नवता-सी मैं उसी में फब जाऊँगी;
मेरे प्रतिपाल, तुम प्रलय-समान आये,
तो भी मैं तुम्हीं में, हाल, बेला-सी बिलाऊँगी!

5

लूँगी क्या तुमको रो कर ही?
मेरे नाथ, रहे तुम नर से नारायण हो कर ही!

उस समाधि-बल की बलिहारी,
अच्छी मैं नारी की नारी।
पूजा तो कर सकूँ तुम्हारी,
धुलूँ चरण धो कर ही।
लूँगी क्या तुमको रो कर ही?

वह मेरी जनता ही होगी,
स्वयं जनार्दन जिसके भोगी।
आओ हे अनुपम उद्योगी
पाऊँ सुध खो कर ही!
लूँगी क्या तुमको रो कर ही?

यदि प्रभुत्व है तुममें आया,
तो मैंने प्रभु को पाया।
लिया मिलन-फल यह मनभाया,
विरह - बीज बो कर ही!
लूँगी क्या तुमको रो कर ही?

6

फिर भी नाथ न आये?
लेने गये हाय! जो उनको, वे भी लौट न पाये।

रहे न हम सब आज कहीं के,
वहाँ गये सो हुए वहीं के!
माया, तेरे भाव यहीं के,
वहाँ उन्हें क्यों भाये?
फिर भी नाथ न आये!

निज हैं उन्हें अन्य जन सारे,
भव पर विभव उन्होंने वारे।
पर हा! उलटे भाग्य हमारे,
निज भी हुए पराये।
फिर भी नाथ न आये!

इतने पर भी यहाँ जियूँ मैं,
अमृत पियें वे, अश्रु पियूँ मैं!
अपनी कन्था आप सियूँ मैं,
अपनापन अपनाये।
फिर भी नाथ न आये!

7

अब भी समय नहीं आया?
कब तक करे प्रतीक्षा काया, जिये कहाँ तक जाया?

होती है मुझको यह शंका, क्षमा करो हे नाथ,
समय तुम्हारे साथ नहीं क्या, तुम्हीं समय के साथ?
कहाँ योग मनभाया?
अब भी समय नहीं आया?

तुम स्वच्छन्द, यहाँ आने में होगा क्या यति भंग?
अपना यह प्रबन्ध भी देखो—अग्नि-सलिल का संग?
मैंने तो रस पाया!
अब भी समय नहीं आया?

8

आली, पुरवाई तो आई, पर वह घटा न छाई,
खोल चंचु-पट चातक, तूने ग्रीवा वृथा उठाई।
उठकर गिरा शिखण्ड, शिखी ने गति न गिरा कुछ पाई,
स्वयं प्रकृति ही विकृति बने तब किसका वश है माई!
किन्तु प्रकृति के पीछे भी तो पुरुष एक है न्यायी,
आशा रक्खो, आशा रक्खो आशा रक्खो भाई!

9

सोने का संसार मिला मिट्टी में मेरा,
इसमें भी भगवान, भेद होगा कुछ तेरा।
देखूँ मैं किस भाँति, आज छा रहा अँधेरा,
फिर भी स्थिर है जीव किसी प्रत्यय का प्रेरा।
तेरी करुणा का एक कण
बरस पड़े अब भी कहीं,
तो ऐसा फल है कौन, जो
मिट्टी में फलता नहीं?

राहुल-जननी

यशोधरा

(गान)

भले ही मार्ग दिखाओ लोक को,
गृह-मार्ग न भूलो हाय!
तजो हो प्रियतम! उस आलोक को,
जो पर ही पर दरसाय।

(राहुल का प्रवेश)

राहुल

अम्ब, यह दिन भी प्रतीक्षा में चला गया,
कोई समाचार नहीं आया उनका नया।
कौन जानें, जायगा न यों ही दिन दूसरा,
आयी तुझ-सी ही यह सन्ध्या धूलि-धूसरा!
देख, वे दो तारे शून्य नभ में हैं झलके!
गैरिकदुकूलिनी, ज्यों तेरे अश्रु छलके!

यशोधरा

किन्तु बेटा, तुझ-सा सुधांशु मेरी गोद में;
लाल, निज काल काट लूँगी मैं विनोद में।

राहुल

जननि, न जानें, मन कैसा हुआ जाता है।
शून्य उदासीन भाव उमड़ा-सा आता है!
तात के समीप चला जाऊँ बने जैसे मैं;
किन्तु तुझे छोड़ ऐसे जाऊँ भला कैसे मैं?

यशोधरा

बेटा, मुझे छोड़ गये तेरे तात कब के,
तू भी छोड़ जायगा क्या दुःखिनी को अब के?
तेरे सुख में ही सदा मेरा परितोष है,
तेरे नहीं, मेरे लिए मेरा भाग्य-दोष है।
किन्तु जो जो लेने गये, वे रम गये वहीं,
एक भी तो लौट कर आया है यहाँ नहीं।

राहुल

मैं हूँ एक, लाकर उन्हें भी लौट आऊँ जो,
किन्तु कैसे जाऊँ तुझे छोड़ जाने पाऊँ जो!
मेरा ब्याह कर दे माँ! मेरी बहू आयगी,
पाकर उसे तू कुछ तोष तो भी पायगी।

यशोधरा

और मेरी चिन्ता छोड़ जायगा तू चाव से?
हाय! मैं हँसूँ या आज रोऊँ इस भाव से?
मुझ-सी न रोयगी क्या तेरे बिना वह भी?

राहुल

ओहो! एक नूतन विपत्ति होगी यह भी!
सचमुच! ध्यान ही न आया मुझे इसका।
झेल सके तुझ-सा जो, ऐसा प्राण किसका?
बालिका वराकी वह कैसे सह पायगी?
जल हिमबालुका-सी पल में विलायगी!
मुझको प्रतीति हुई आज इस बात की,
मैं वर बनूँ तो मुझे हत्या बधू-घात की।

यशोधरा

पाप शान्त! पाप शान्त! बेटा यह क्या किया?
एक नया सोच और तूने मुझको दिया।

राहुल

माँ, माँ, क्षमा कर दे माँ, दुःख जो हुआ तुझे;
तेरी दशा सोच यही कहना पड़ा मुझे।
मैं क्या करूँ? कोई युक्ति मेरी नहीं चलती;

तेरी हठशीलता ही अन्त में है खलती।
खो दिया सुयोग स्वयं, चूकी हाय अम्ब, तू;
पाकर भी पा न सकी निज अवलम्ब तू।

यशोधरा

राहुल, सुयोग का भी एक योग होता है;
भोगना ही पड़ता है, जो जो भोग होता है!

राहुल

खेद नहीं अपने किये पर क्या अब भी?

यशोधरा

खेद क्यों करूँगी वत्स! दुःख मुझे तब भी।

राहुल

आप ही लिया है यह दुःख तूने, आप ही!
अच्छा लगता है माँ, तुझे क्यों घोर ताप ही?

यशोधरा

घोर तपस्ताप तेरे तात ने है क्यों सहा?
तू भी अनुशीलन का श्रम क्यों उठा रहा?

राहुल

तात को मिली है सिद्धि, पा रहा हूँ बृद्धि मैं।

यशोधरा

लाभ करती हूँ इसी भाँति आत्मशुद्धि मैं।
पाप नहीं, किन्तु पुण्यताप मेरा संगी है,
मरण-प्रसंग में यही तो एक अंगी है!
त्राण मिलता है मुझे तात! निज पीड़ा में,
प्राण मिलता है तुझे जैसे मल्ल-क्रीड़ा में
दुःख से भी जाऊँ? मुझे उससे है ममता,
बढ़ती है जिससे सहानुभूति-समता।

राहुल

कह फिर दुःख से क्यों रह रह रोती है?

यशोधरा

और क्या कहूँ मैं, मुझे इच्छा यही होती है!

राहुल

अच्छी नहीं, अम्ब, यह इच्छा की अधीनता,
और परिणाम जिसका हो हीन-दीनता।
तू ही बता, धर्म क्या नहीं है यही जन का—
शासित न होकर माँ, शासक हो मन का।

यशोधरा

यह जन शासक न होता मन का यहाँ
तात! तो चला न जाता, धन उसका जहाँ?
भार रखती हूँ, उस शासन का जब मैं,
हलकी न होऊँ नेंक रो कर भी तब मैं?
चपल तुरंग को कशा ही नहीं मारते,
हाथ फेर अन्त में उसे हैं पुचकारते।
रखती हूँ मन को दबाकर ही सर्वदा,
साँस भी न लेने दूँ उसे क्या मैं यदा कदा?
कण्ठ जब रुँधता है, तब कुछ रोती हूँ,
होंगे गत जन्म के ही मैल, उन्हें धोती हूँ।
शोक के समान हम हर्ष में भी रोते हैं,
अश्रुतीर्थ में ही सुख-दुःख एक होते हैं!
रोती हूँ, परन्तु क्या किसी का कुछ लेती हूँ?
नीरस रसा न हो, मैं नीर ही तो देती हूँ।

राहुल

भूलती है मुझको भी तू जिनके ध्यान में,
पाकर उन्हीं को छोड़ बैठी किस भान में?
लाख लाख भाँति मुझे बहुधा मनाती है,
और निज देव पर दर्प तू जनाती है!
कैसी यह आन-बान, भीतर है मरती,
बाहर से फिर भी तू मिथ्या मान करती!

यशोधरा

तुझको मनाना पड़ता है, तू अजान है;
प्रभु के निकट ही तो मूल्य पाता मान है।
रुष्ट न हो, मैं नहीं हूँ वत्स, मिथ्याचारिणी,

दीना नहीं, दुःखिनी हूँ, तो भी धर्मधारिणी।

राहुल

कैसा धर्म? तात ने क्या रोक दिया आने से?—
नाही कर बैठी स्वयं जो तू वहाँ जाने से?

यशोधरा

राहुल, न पूछ यह बात बेटा, मुझसे,
ठहर, कहेगी कभी तेरी बहू तुझसे।

राहुल

आह! फिर मेरी बहू? चाहे रहे तुतली,
किन्तु तेरे ज्ञान की वही है एक पुतली!
मेरे लिए अम्ब, बन बैठी तू पहेली है,
झूठी कल्पना ही आज जिसकी सहेली है!

यशोधरा

कल्पना भी सत्य हो, कृतित्व तभी अपना,
सच्चा करने के लिए बेटा, देख सपना!

राहुल

मैं तो यही देखता हूँ—तात नहीं आये हैं।

यशोधरा

आयँगे वे, आशा हम उनकी लगाये हैं।

(नेपथ्य)

आ रहे हैं, आ रहे हैं, धन्य भाग्य सबके!

यशोधरा

एवमस्तु, एवमस्तु निश्चय ही अब के—

राहुल

माँ, क्या पिता आ रहे हैं?

यशोधरा

बेटा, यह सुन ले,
जो जो तुझे चाहिए, उसे आ, आज चुन ले।

यशोधरा

1

रे मन, आज परीक्षा तेरी।
विनती करती हूँ मैं तुझसे,
बात न बिगड़े मेरी।

अब तक जो तेरा निग्रह था,
बस अभाव के कारण वह था।
लोभ न था, जब लाभ न यह था;
सुन अब स्वागत-भेरी!
रे मन, आज परीक्षा तेरी।

दो पग आगे ही वह धन है,
अवलम्बित जिस पर जीवन है।
पर क्या पथ पाता यह जन है?
मैं हूँ और अँधेरी।
रे मन, आज परीक्षा तेरी।

यदि वे चल आये हैं इतना,
तो दो पद उनको है कितना?
क्या भारी वह, मुझको जितना?
पीठ उन्हींने फेरी।
रे मन, आज परीक्षा तेरी।

सब अपना सौभाग्य मनावें,
दरस-परस, निःश्रेयस पावें।
उद्धारक चाहें तो आवें,
यहीं रहे यह चेरी।
रे मन, आज परीक्षा तेरी।

2

शेष की पूर्ति यही क्या आज?
भिक्षुक बनकर घर लौटे हैं कपिलनगर-नरराज!

राजभोग से तृप्त न होकर मानों वे इस बार
हाथ पसार रहे हैं जाकर जिसके-तिसके द्वार!
छोड़कर निज कुल और समाज।
शेष की पूर्ति यही क्या आज?

हाय नाथ! इतने भूखे थे, धीरज रहा न और?
पर कब की प्यासी यह दासी बैठी है इस ठौर–
तुम्हारी–अपनी लेकर लाज।
शेष की पूर्त्ति यही क्या आज?

स्वयं दान कर सकते हैं जो माँगें वे यों भीख!
राहुल को देने आये हो आज कौन-सी सीख?
गिरे गोपा के ऊपर गाज!
शेष की पूर्ति यही क्या आज?

3

प्रभु उस अजिर में आ गये, तुम कक्ष में अब भी यहाँ?
हे देवि, देह धरे हुए अपवर्ग उतरा है वहाँ।

सखि, किन्तु इस हतभागिनी को ठौर हाय! वहाँ कहाँ?
गोपा वहीं है, छोड़कर उसको गये थे वे जहाँ।

बुद्धदेव

1

अम्ब, आ रहे हैं ये तात;
शान्त हों अब सारे उत्पात।
ले, अब तो रह गयी 'गर्विणी-गोपा' की वह लाज!
जितना रोना हो तू रो ले इनके आगे आज।
ओस तू, तो ये स्वयं प्रभात!
शान्त हों अब सारे उत्पात।

माँ, तेरे अंचल-जैसी ही इनकी छाया धन्य,
पर इनका आलोक देख तो, कैसा अतुल अनन्य!
कौन आभा इतनी अवदात?
शान्त हों अब सारे उत्पात।

तात! तुम्हारा तप मुखरित है, माँ का नीरव मात्र,
पर अथाह पानी रखता है यह सूखा-सा गात्र।
नहीं क्या यह विस्मय की बात?
शान्त हों अब सारे उत्पात।

तुमको सिद्धि मिली है तप से, हुआ इसे क्या लाभ?
"वत्स! इष्ट क्या और इसे अब, आया जब अमिताभ?
प्रथम ही पाया तुझ-सा जात!
शान्त हों अब सारे उत्पात।"

2

मानिनि, मान तजो लो, रही तुम्हारी बान!
दानिनि, आया स्वयं द्वार पर यह तव-तत्रभवान!

किसकी भिक्षा न लूँ, कहो मैं? मुझको सभी समान,
अपनाने के योग्य वही तो जो हैं आर्त्त-अजान।

राजभवन के भोगों में था दुर्लभ वह जलपान,
किया राम ने गुह-शवरी से जिसका स्वाद बखान।

शिक्षा के बदले भिक्षा भी दे न सकें प्रतिदान
तो फिर कहो, उऋण हों कैसे वे लघु और महान?

माना, दुर्बल ही था गौतम छिपकर गया निदान,
किन्तु शुभे, परिणाम भला ही हुआ, सुधा-सन्धान।

क्षमा करो सिद्धार्थ शाक्य की निर्दयता प्रिय जांन,
मैत्री-करुणा-पूर्ण आज वह शुद्ध बुद्ध भगवान।

यशोधरा

पधारो, भव भव के भगवान!
रख ली मेरी लज्जा तुमने, आओ अत्रभवान!

नाथ, विजय है यही तुम्हारी,
दिया तुच्छ को गौरव भारी।
अपनाई मुझ-सी लघु नारी,
होकर महा महान!
पधारो, भव भव के भगवान!

मैं थी सन्ध्या का पथ हेरे,
आ पहुँचे तुम सहज सबेरे।
धन्य कपाट खुले ये मेरे!

दूँ अब क्या नव-दान?
पधारो, भव भव के भगवान!

मेरे स्वप्न आज ये जागे,
अब वे उपालम्भ क्यों भागे?
पाकर भी अपना धन आगे
भूली-सी मैं भान।
पधारो, भव भव के भगवान!

दृष्टि इधर जो तुमने फेरी,
स्वयं शान्त जिज्ञासा मेरी।
भय-संशय की मिटी अँधेरी,
इस आभा की आन!
पधारो, भव भव के भगवान!

यही प्रणति उन्नति है मेरी,
हुई प्रणय की परिणति मेरी,
मिली आज मुझको गति मेरी,
क्यों न करूँ अभिमान?
पधारो, भव भव के भगवान!

पुलक पक्ष्म परिगीत हुए ये,
पद-रज पोंछ पुनीत हुए ये!
रोम रोम शुचि-शीत हुए ये,
पा कर पर्वस्नान।
पधारो, भव भव के भगवान!

इन अधरों के भाग्य जगाऊँ;
उन गुल्फों की मुहर लगाऊँ!
गयी वेदना, अब क्या गाऊँ?
मग्न हुई मुसकान।
पधारो, भव भव के भगवान!

कर रक्खा, यह कृपा तुम्हारी;
मैं पद-पद्मों पर ही वारी।
चरणामृत करके ये खारी
अश्रु करूँ अब पान।
पधारो, भव भव के भगवान!

बुद्धदेव

दीन न हो गोपे, सुनो हीन नहीं नारी कभी,
भूत-दया-मूर्ति वह मन से, शरीर से,
क्षीण हुआ वन में क्षुधा से मैं विशेष जब,
मुझको बचाया मातृजाति ने ही खीर से।
आया जब मार मुझे मारने को वार वार
अप्सरा-अनीकिनी सजाये हेम-हीर से।
तुम तो यहाँ थीं, धीर ध्यान ही तुम्हारा वहाँ
जूझा, मुझे पीछे कर, पंचशर वीर से।

अन्तिम अस्त्र, तुम्हारा रूप धरे एक अप्सरा आई;
किन्तु बराकी अपनी प्रवृत्ति पर आप काँप सकुचाई!

सुना था कलकण्ठी से ही कहीं
मैंने मन का यह मन्त्र—
तनें, पर इतना, जो टूटे नहीं
तन्त्री, तेरा वह तन्त्र।

बतलाऊँ मैं क्या अधिक तुम्हें तुम्हारा कर्म,
पाला है तुमने जिसे, वही बधू का धर्म।

यशोधरा

कृतकृत्य हुई गोपा,
पाया यह योग, भोग, अब जा तू,
आ राहुल, बढ़ बेटा,
पूज्य पिता से परम्परा पा तू।

राहुल

तात, पैतृक दाय दो, निज शील सिखलाओ, मुझे,
प्रणत हूँ मैं इन पदों में, मार्ग दिखलाओ मुझे,
असत से सत में, तिमिर से ज्योति में लाओ मुझे,
मृत्यु से तुम अमृत में हे पूज्य, पहुँचाओ मुझे।
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
असतो मा सद्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

बुद्धदेव

मैं भी कृतकृत्य आज वीर वत्स, आ तू।
स्वाधिकार भागी बन भूरि भूरि भा तू।
सत्प्रकाश और अमृत एक साथ पा तू,
बुद्ध-शरण, धर्म-शरण, संघ-शरण जा तू।

राहुल

बुद्धं शरणं गच्छामि,
धर्मं शरणं गच्छामि,
संघं शरणं गच्छामि।

यशोधरा

तुम भिक्षुक बनकर आये थे, गोपा क्या देती स्वामी?
था अनुरूप एक राहुल ही, रहे सदा यह अनुगामी?
मेरे दुख में भरा विश्वसुख, क्यों न भरूँ फिर मैं हामी!
बुद्धं शरणं, धर्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामिऽ।

हरिः ॐ शान्तिः

द्वापर

कर्म-विपाक-कंस की मारी
दीन देवकी-सी चिरकाल,
लो, अबोध अन्तःपुरि मेरी!
अमर यही माई का लाल।

निवेदन

द्वापर से चित्रण के लिए जिस विशाल पट की आवश्यकता है, उसकी पूर्ति इन परिमित पृष्ठों से क्या हो सकती है। परन्तु जिस परिस्थिति में यह पुस्तक लिखी गयी है वह लेखक के जीवन में बहुत ही संकल्प-विकल्प पूर्ण रही। क्या जानें, इसी कारण से यह नाम आ गया अथवा अन्य किसी कारण से। यह भी द्वापर—सन्देह की ही बात है।

श्रीमद्भागवत् के दशमस्कन्ध के तेईसवें अध्याय में एक कथा है। श्रीकृष्ण अपनी मण्डली के साथ वन में दूर निकल गये थे। वहाँ उनके बन्धुओं को भूख लगी। निकट ही एक स्थान पर यज्ञ हो रहा था। उन्होंने भोजन की प्राप्ति के लिए, उन्हें वहीं भेजा। परन्तु याज्ञिक ब्राह्मणों ने उन्हें दुत्कार दिया। भगवान् ने फिर भी उन्हें यज्ञशाला में भेजा। परन्तु इस बार पुरुषों के नहीं, स्त्रियों के निकट। वहाँ उनकी अभिलाषा पूरी हो गयी, स्त्रियों ने विविध व्यंजन लाकर भगवान् को भी भोग अर्पण किया। इसी कथा के अन्तर्गत एक कथा और है। एक ही श्लोक में वह कह दी गयी है। एक ब्राह्मण ने बलपूर्वक अपनी वनिता को रोक लिया। नैवेद्य समर्पण तो दूर, वह भगवान् के दर्शन भी न पा सकी। इस दुःख से उसने शरीर छोड़ दिया। शुकदेव जी ने लिखा है—

> तत्रैका विधृता भर्त्ता भगवन्तं यथा श्रुतम्
> हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम्।

इस सम्बन्ध में इतना ही है। खेद है, इस 'विधृता' का नाम नहीं मिला। अतएव, इसके सम्बन्ध की रचना का यही शीर्षक देना पड़ा।

इसी घटना के अनन्तर इन्द्र-यज्ञ छोड़कर गोवर्द्धन-यज्ञ की कथा आती है और बलराम का भाषण उसी की भूमिका के रूप में है। इसमें सन्देह नहीं, यज्ञों की तत्कालीन परिपाटी से श्रीकृष्ण सन्तुष्ट न थे। परन्तु पशुबलि के विरोध में ही 'अन्नकूट' खड़ा किया गया है या नहीं, यह विद्वानों के विचार का विषय

है। लेखक की भावना स्वतन्त्र होकर भी निराधार नहीं, उसे स्वयं भगवान् का बल प्राप्त है—

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।"

चिरगाँव
देवशयनी 11-1993

चतुर्थावृत्ति की भूमिका

'द्वापर' का आरम्भ 'सुदामा' को लेकर हुआ था। परन्तु पुस्तक में उसे इस कारण नहीं दिया गया था कि लिखते लिखते उसे तीन खण्डों में समाप्त करने का विचार किया गया था। पहला खण्ड 'गोपाल' दूसरा 'द्वारकाधीश' और तीसरा 'योगिराज'। परन्तु अनेक कारणों से अब तक कुछ न हो सका। आगे भी कोई बड़ी आशा नहीं। अस्तु इस बार पुस्तक के अन्त में वह आरम्भ का अंश भी जोड़ दिया गया है।

आशा न होने पर भी लेखक को असन्तोष नहीं। जो कार्य उससे न हो सकेगा, प्रभु चाहेंगे तो वह दूसरे कुशल कृतियों द्वारा और भी अच्छे रूप में सम्पन्न होगा।

—लेखक

चिरगाँव
संवत्सर 2002

श्रीगणेशाय नमः

द्वापर

(गोपाल)

मंगलाचरण

धनुर्बाण वा वेणु लो श्याम-रूप के संग,
मुझ पर चढ़ने से रहा राम! दूसरा रंग।

श्रीकृष्ण

राम-भजन कर पांचजन्य! तू,
वेणु बजा लूँ आज अरे,
जो सुनना चाहे सो सुन ले,
स्वर ये मेरे भाव भरे—
कोई हो, सब धर्म छोड़ तू
आ, बस मेरा शरण धरे,
डर मत, कौन पाप वह, जिससे
मेरे हाथों तू न तरे?

राधा

शरण एक तेरे मैं आयी,
धरे रहें सब धर्म हरे!
बजा तनिक तू अपनी मुरली,
नाचें मेरे मर्म हरे!
नहीं चाहती मैं विनिमय में
उन वचनों का वर्म हरे!
तुझको—एक तुझी को—अर्पित
राधा के सब कर्म हरे!
यह वृन्दावन, यह वंशीवट,
यह यमुना का तीर हरे!
यह तरते ताराम्बर वाला
नीला निर्मल नीर हरे!
यह शशिरंजितसितघन-व्यंजित,
परिचित, त्रिविध समीर हरे!
बस, यह तेरा अंक और यह
मेरा रंक शरीर हरे!
कैसे तुष्ट करेगी तुझको,
नहीं राधिका बुधा हरे!
पर कुछ भी हो, नहीं कहेगी
तेरी मुग्धा मुधा हरे!
मेरे तृप्त प्रेम से तेरी
बुझ न सकेगी क्षुधा हरे!
निज पथ धरे चला जाना तू,
अलं मुझे सुधि-सुधा हरे!
सब सह लूँगी—रो रो कर मैं,

देना मुझे न बोध हरे!
इतनी ही विनती है तुझसे,
इतना ही अनुरोध हरे!
क्या ज्ञानापमान करती हूँ,
कर न बैठना क्रोध हरे!
भूले तेरा ध्यान राधिका,
तो लेना तू शोध हरे!
झुक, वह वाम कपोल चूम ले
यह दक्षिण अवतंस हरे!
मेरा लोक आज इस लय में
हो जावे विध्वंस हरे!
रहा सहारा इस अन्धी का
बस यह उन्नत अंस हरे!
मग्न अथाह प्रेम-सागर में
मेरा मानस-हंस हरे!

यशोदा

मेरे भीतर तू बैठा है,
बाहर तेरी माया;
तेरा दिया राम, सब पावें,
जैसा मैंने पाया।

मेरे पति कितने उदार हैं,
गद्गद हूँ यह कहते—
रानी-सी रखते हैं मुझको,
स्वयं सचिव-से रहते।

इच्छा कर, झिड़कियाँ परस्पर
हम दोनों हैं सहते,
थपकी-से हैं अहा! थपेड़े,
प्रेमसिन्धु में बहते।

पूर्णकाम मैं, बनी रहे बस
तेरी छत्रच्छाया;
तेरा दिया राम, सब पावें,
जैसा मैंने पाया।

जिये बाल-गोपाल हमारा,
वह कोई अवतारी;
नित्य नये उसके चरित्र हैं,
निर्भय विस्मयकारी।

पड़े उपद्रव की भी उसके
कब-किसके घर वारी,
उलही पड़ती आप, उलहना
लाती है जो नारी।

उतर किसी नभ का मृगांक-सा
इस आँगन में आया;
तेरा दिया राम, सब पावें,
जैसा मैंने पाया।

गायक बन बैठा वह, मुझसे
रोता कण्ठ मिला के;
उसे सुलाती थी हाथों पर
जब मैं हिला हिला के।

जीने का फल पा जाती हूँ
प्रतिदिन उसे खिला के;
मरना तो पा गयी पूतना,
उसको दूध पिला के!

मन की समझ गया वह समझो,
जब तिरछा मुसकाया!
तेरा दिया राम, सब पावें,
जैसा मैंने पाया।

खाये बिना मार भी मेरी
वह भूखा रहता है!
कुछ ऊधम करके तटस्थ-सा
मौन भाव गहता है।

आते हैं कल-कल सुन कर वे,
तो हँस कर कहता है—
'देखो यह झूठा झुँझलाना,
क्या सहता-सहता है!'

हँस पड़ते हैं साथ साथ ही
हम दोनों पति-जाया;
तेरा दिया राम, सब पावें,
जैसा मैंने पाया।

मैं कहती हूँ—बरजो इसको,
नित्य उलहना आता,
घर की खाँड़ छोड़ यह बाहर
चोरी का गुड़ खाता।

वे कहते हैं—'आ मोहन, अब
अफरी तेरी माता;
स्वादु बदलने को न अन्यथा
मुझे बुलाया जाता!'

वह कहता है—'तात, कहाँ-कब
मैंने खट्टा खाया?'
तेरा दिया राम, सब पावें,
जैसा मैंने पाया।

मेरे श्याम-सलौने की है,
मधु से मीठी बोली,
कुटिल अलक वाले की आकृति
है क्या भोली-भोली!

मृग-से दृग हैं, किन्तु अनी-सी
तीक्ष्ण दृष्टि अनमोली,
बड़ी कौन-सी बात न उसने
सूक्ष्म बुद्धि पर तोली?

जन्म जन्म का विद्या-बल है
संग संग वह लाया;
तेरा दिया राम, सब पावें,
जैसा मैंने पाया।

उसका लोकोत्तर साहस सुन,
प्राण सूख जाता है;
किन्तु उसी क्षण उसके यश का
नूतन रस पाता है।

अपनों पर उपराग देखकर
वह आगे आता है;
उलझ नाग से, सुलझ आग से,
विजय-भाग लाता है।

'धन्य कन्हैया, तेरी मैया!'
आज यही रव छाया,
तेरा दिया राम, सब पावें,
जैसा मैंने पाया।

काली-दह में तू क्यों कूदा,
डाँटा तो हँस बोला—
''तू कहती थी—'और चुराना
तुम मक्खन का गोला।

छींके पर रख छोड़ेंगी सब
अब भिड़-भरा मठोला!'
निकल उड़ीं वे भिड़ें प्रथम ही;
भाग बचा मैं भोला!''

बलि जाऊँ! वंचक ने उलटा
मुझको दोष लगाया;
तेरा दिया राम, सब पावें,
जैसा मैंने पाया।

उसे व्यापती है तो केवल
यही एक भव-बाधा—
''कह दूँगी खेलेगी तेरे
संग न मेरी राधा।

भूल जायगा नाच-कूद सब,
धरी रहेगी धा-धा।
हुआ तनिक उसका मुँह भारी
और रहा तू आधा!"

अर्थ बताती है राधा ही,
मुरली ने क्या गाया;
तेरा दिया राम, सब पावें,
जैसा मैंने पाया।

बना रहे वृन्दावन मेरा,
क्या है नगर-नगर में!
मेरा सुरपुर बसा हुआ है
व्रज की डगर-डगर में।

प्रकट सभी कुछ नटनागर की
जगती जगर-मगर में;
कालिन्दी की लहर बसी है
क्या अब अगर-तगर में।

चाँदी की चाँदनी, धूप में
जातरूप लहराया;
तेरा दिया राम, सब पावें,
जैसा मैंने पाया।

अहा! घास में भी सुवास है,
भूमि हरी जब मेरी;
गायों-भरा गोठ, गायें हैं
दूध-भरी सब मेरी।

बनी गिरस्ती क्षीरोदधि की
पूर्ण तरी अब मेरी;
मैं तेरी चेरी, पर पटतर
कौन नरी कब मेरी?

गर्व नहीं, यह कृतज्ञता है,
मैंने जिसे जनाया;
तेरा दिया राम, सब पावें,
जैसा मैंने पाया।

बाहर मैं जन-मान्य और धन-
धान्य-पूर्ण घर मेरा;
पाया है, तब देने को भी
प्रस्तुत है कर मेरा।

लहराता है गहरा गहरा
यह मानस-सर मेरा;
वही मराल बना है इसमें,
जो इन्दीवर मेरा।

मुक्ति-शुक्ति-सी पली युक्ति से,
भुक्ति - भोग मन - भाया;
तेरा दिया राम, सब पावें,
जैसा मैंने पाया।

विधृता

राम राम! हा! ठहरो, ठहरो
यह तुम क्या करते हो?
अबला कह कर भी मुझको यों
बलपूर्वक धरते हो!

लज्जा भी छोड़ी क्या तुमने,
छोड़ी जहाँ दया है?
तन न जाय, पर मन तो मेरा
अपनी गैल गया है।

लोहित नेत्र, फड़कते नथुने,
विकृत वदन, खर वाणी;—
नारायण! मेरे नर में है
कौन नया यह प्राणी!

रौद्र नहीं, वीभत्स अशुचि यह,
जाओ अरे, नहाओ!
यह शरीर अब कहाँ जायगा,
शुद्धि-शान्ति तुम पाओ।

पर सुनते जाओ, सम्भवतः
फिर अवसर न रहेगा;
तुम सुनना भी चाहोगे तो
तुमसे कौन कहेगा?

मैं मर चुकी, किन्तु मरते ही
ठंढी नहीं पड़ी हूँ;
तुमसे दो बातें कहने को,
क्षण भर यहाँ खड़ी हूँ।

हम तुम पति-पत्नी थे दोनों,
दीक्षित इस अध्वर में;
पर मेरा पत्नीत्व मिटाया
किसने यह पल भर में?

मुट्ठी भर भी जो न दे सके,
दासी थी, मैं आहा!
यज्ञ भंग हो गया तुम्हारा,
मेरा सब कुछ स्वाहा!

वह गुण किसने तोड़ा, जिसमें
यह जोड़ा जकड़ा था?
नर, झकझोर डालने को ही
क्या, यह कर पकड़ा था?

कामुक-चाटुकारिता ही थी
क्या वह गिरा तुम्हारी?—
'एक नहीं, दो दो मात्राएँ
नर से भारी नारी!'

अहा! 'यत्र नार्यस्तु'—वाक्य की
पूर्ण सत्यता पाकर,
क्यों न रमेंगे अमर तुम्हारे
इस अध्वर में आकर!

हा अबला! आ, अरी अनादर-
अविश्वास की मारी,
मर तो सकती है अभागिनी,
कर न सके कुछ नारी।

जहाँ 'दीयतां' तथा 'भुज्यतां'
मुख्य यही दो बातें,
जहाँ अतिथि हों आप देवता,
आज वहीं ये घातें!

भूखे जायँ वहाँ से वे ही
जो अब भी बालक हैं,
किन्तु हमारी परम्परा के
प्रश्रय हैं, पालक हैं।

धर्म तुम्हारे घर आया था,
अपने कर फैलाये;
पर भूखे ने भरम गमाया,
फिर भी धक्के खाये!

अब तुम किसको साध रहे हो,
चला गया है वह तो;
पाप कर रही थी क्या कोई,
कहो, सुनूँ मैं यह तो?

अधिकारों के दुरुपयोग का
कौन कहाँ अधिकारी?
कुछ भी स्वत्व नहीं रखती क्या
अर्द्धांगिनी तुम्हारी?

मैं पुण्यार्थ जा रही थी, तुम
पाप देख बैठे हा!
और आप अवसर के वर को
शाप लेख बैठे हा!

जिनमें पशु-वध करते करते
सूखा हृदय तुम्हारा,
वे मख मिटें, और हे ईश्वर,
इन्हीं बालकों द्वारा!

स्वयं स्वर्ग-फल वाली भी उस
लोलुपता का लय हो;
कर्म हमारा क्षमता-मय हो,
धर्म सुममतामय हो।

किंवा कटता नहीं पाप भी,
जब तक रहे अधूरा;
हो निषिद्ध भी सांग सिद्ध यह
यज्ञ तुम्हारा पूरा!

नाचें - गावें सुरांगनाएँ,
आवें, इन्द्र पधारें;
मेरे आश्रय तो उपेन्द्र ही,
तारें और न तारें।

व्रतियों की उन कुलस्त्रियों के
प्रति अश्लील रहो तुम,
फिर भी श्रोत्रिय-होत्री ठहरे,
क्यों न सुशील रहो तुम?

मैं भूखों को भोजन देने
जाकर भी दुःशीला;
ललना तो छलना है, ओ हो,
धन्य तुम्हारी लीला।

हाय! वधू ने क्या वर-विषयक
एक वासना पाई?
नहीं और कोई क्या उसका
पिता, पुत्र या भाई?

नर के बाँटे क्या नारी की
नग्न-मूर्ति ही आई!
माँ, बेटी या बहिन हाय! क्या
संग नहीं वह लाई?

श्याम-सलौने पर यदि सचमुच
मेरा मन ललचाया,
तो फिर क्या होता है इससे,
कहीं रहे यह काया?

दूर मधुप को भी पराग निज
पहुँचा दिया कुसुम ने;
हे वेदज्ञ, खेद! इतना भी
भेद न जाना तुमने।

'छैल-छोकड़ा' कहो उसे तुम,
प्रेम-वाद्य वह बजता;
जो जैसे भजता है उसको,
वह भी वैसे भजता।

अथवा तुम्हें दोष क्या, युग ही
यह 'द्वापर' संशय का,
पर यदि अपना ध्यान हमें है,
तो कारण क्या भय का?

हुए वत्स-धेनुक-वध से वे
गो - घातक हत्यारे?
तुम शुचि, पशु-बलि पर ही जिनके
सप्ततन्तु हैं सारे?

वत्स न था वह बाघ और वह
धेनुक था खर-दानव;
लोक-यज्ञ में ऐसी बलि दे,
हो तो ऐसा मानव।

रहे लोक की व्यथा, वेद की
कथा कहो मुँह धोकर;
किन्तु स्वर्ग का मार्ग गया है
इसी नरक से होकर!

कौन आततायी अवध्य है,
यह तो मुझे बताओ?
शक्ति चाहिए किन्तु वहाँ, तुम
साहस यहाँ जताओ।

हाँ, हाँ, गाली दो तुम उसको,
भला और क्या दोगे?
निन्दक सही, परन्तु अन्ततः
तुम उसके ही होगे।

'वेद उसी को तो गाते हैं?'
धिक् वक्रोक्ति तुम्हारी,
नहीं, वेद तो खोज उसी को
रोते हैं बलिहारी!

तुम्हें वेद में नहीं मिला वह?
तुम हो वेदज्ञानी;
किन्तु वेद का अन्त कहाँ है,
ध्यान धरो कुछ ध्यानी!

कुछ छन्दों तक ही परिमित क्या
उस अनन्त की वाणी?
नित्य नित्य नूतन भावों से
भूषित वह कल्याणी।

नित्य नई अपनी रचनाएँ
रचता है वह स्रष्टा;
देश-देश में, काल-काल में,
हैं मन्त्रों के द्रष्टा।

कृष्ण अवैदिक? और राम भी?
ठहरो, धीरज धारो,
वेदवादरत, ठंढे जी से
सोचो और विचारो।

श्रुति-दर्शी ऋषि न थे हमारे
दम्भी या अभिमानी,
घोषित आप उन्होंने की थी
नेति-नेति की वाणी।

और न्यून वाल्मीकि-व्यास किस
ऋचा-रचयिता ऋषि से?–
युग युग भी परितृप्त रहेंगे
जिनकी अक्षय कृषि से।

पाप शान्त हो! भला राम ने
सीता को कब त्यागा?
इसे यथार्थ मानता है जो,
वह है अज्ञ-अभागा।

राम-नाम के नृप को छलकर,
सुहृदय-सीतावर का,
घर लुटवाने में भी कर था
किसी तुम्हीं से नर का!

राम-कृष्ण का रूप कहाँ से
देखे दृष्टि तुम्हारी;
इन्द्र-वरुण तक ही परिमित है
यह श्रुति-सृष्टि तुम्हारी।

फिर भी यही कहे जाती हूँ,
मानों या मत मानों;
नीरस छान्दस, उस कवि-धन को
जान सको तो जानो।

आगे-पीछे क्या देखोगे,
सम्मुख नहीं निरखते;
तुम क्रोधान्ध न हो जाते यों
कुछ विवेक यदि रखते।

कर्मकाण्ड के इन भाण्डों में
वह रस कहाँ धरा है,
अविश्वास जब हाय! तुम्हारे
घट में आप भरा है।

अविश्वास, हा! अविश्वास ही,
नारी के प्रति नर का;
नर के तो सौ दोष क्षमा हैं,
स्वामी है वह घर का!

उपजा किन्तु अविश्वासी नर
हाय! तुझी से नारी!
जाया होकर जननी भी है,
तू ही पाप-पिटारी।

आती नहीं अलख की लीला,
कभी किसी की लख में;
अपमानित सती भी तो थी
मरी एक दिन मख में।

डरो न द्विज दयनीय, रुद्र का
गण न यहाँ आवेगा;
वे हर भी जो विष न पी सके,
यह हरि पी जावेगा।

जाती हूँ, जाती हूँ अब मैं,
और नहीं रुक सकती;
इस अन्याय-समक्ष, मरूँ मैं,
कभी नहीं झुक सकती।

किन्तु आर्य-नारी तेरा है
केवल एक ठिकाना;
चल तू वहीं, जहाँ जाकर फिर
नहीं लौटकर आना।

बलराम

उलटा लेट कुहनियों के बल,
धरे वेणु पर ठोड़ी,
कनू कुंज में आज अकेला,
चिन्ता में है थोड़ी।

सुबल, विशाल, अंशु, ओजस्वी,
वृषभ, वरूथप, आओ;
यमुना-तट, वट-तले बैठकर
कुछ मेरी सुन जाओ।

खेल-कूद में ही न अरे, हम
सब अवसर खो देंगे;
भावी जीवन के विचार भी
कुछ निश्चित कर लेंगे।

रखते हो तो दिखलाओ कुछ
आभा उगते तारे,
ओज, तेज, साहस के दुर्लभ
दिन हैं यही हमारे।

जावेंगे अवश्य हम अपने
प्रिय पितरों के पथ से;
किन्तु चक्र तो नहीं फँसेंगे;
पूछेंगे निज रथ से।

अपरिष्कृत संकीर्ण कहीं वह
मार्ग न होने पावे;
थल से जल में, जल से नभ में
विस्तृत होता जावे।

नहीं देखते थे क्या पूर्वज
कहाँ काल-गति कैसी?
होगी जहाँ अवस्था जैसी,
वहाँ व्यवस्था वैसी।

कहीं गतानुगतिकता पर ही
रह सकता उद्योगी?
नये नये गीतों की रचना
उन्हीं स्वरों पर होगी।

पितर नहीं खाते थे खट्टा,
खावें हम भी मीठा;
किन्तु बुसा-बासी खाने से,
अच्छा टटका सीठा।

और शर्करा से मोदक ही
बनते नहीं अकेले;
एक स्वादु के भेद असंख्यक,
सिद्ध करे सो ले ले।

मुनियों को भी भ्रमसम्भव है,
असम्मान क्या इसमें?
किन्तु एक भ्रम ऐसा भी है
सर्वनाश है जिसमें।

जहाँ सर्प की भ्रान्ति रज्जु में,
वहाँ विनोद-वरण है;
किन्तु सर्प को रज्जु समझना,
यह प्रत्यक्ष मरण है!

वन्धन-कर्त्तनार्थ पुरखों ने
हमको सार दिया है;
किन्तु साथ ही साथ उन्होंने
उसका भार दिया है।

जितना उसे स्वच्छ रक्खोगे,
उतनी धार बहेगी,
और नहीं तो धूल-छार ही
अपने हाथ रहेगी।

भूमि पूर्वजों की है निश्चय,
कर्षण किन्तु तुम्हारा;
इसीलिए तो था यथार्थ में
उन सबका श्रम सारा।

होंगे वे कृतकृत्य तभी तो,
तुम सपूत जव होगे;
नित्य नये फल-फूलों वाली
हरियाली भर दोगे।

मिला हमें उपवन पुरखों का,
यह सौभाग्य हमारा;
फल ही लेंगे या देंगे भी
हम श्रम-जल की धारा?

सिंचन, रोपण, काट-छाँट से
हाथ सिकोड़ेंगे हम,
झाड़ और झंखाड़ छोड़ कर
तो क्या छोड़ेंगे हम?

जीर्ण वस्तुओं की ममता से
घर ही घूड़ा होगा;
अहा! आज का कुसुम-हार भी
कल का कूड़ा होगा।

यदि मानस-गोमुखी हमारी
निरवधि नहीं झड़ेगी,
तो गर्त्तों में ही जीवन की
धारा पड़ी सड़ेगी।

एक समय जो ग्राह्य, दूसरे
समय त्याज्य होता है;
ऊष्मा में हिम के कम्बल का
भार कौन ढोता है?

सजल रूपिणी पुरवैया-सी
खिड़की से आती है,
और सील-सी लोकालय में
रूढ़ि बैठ जाती है!

रँग के छींटे भी सुन्दर हैं,
पर होली के दिन के,
वही रात में दीवाली की
धब्बे हैं गिन गिन के।

बन जाता है अशिव भयंकर
कभी स्वयं शंकर भी;
दुर्दिन कर देता है दिन को
असमय का जलधर भी।

रहे व्यक्तियों की मर्यादा,
नहीं शक्ति की सीमा;
वेग रहे तो क्यों न बढ़ो तुम,
पड़ जाऊँ मैं धीमा।

पुरखे नदियाँ तरते थे तो
तब है सिन्धु तरो तुम;
अस्वाभाविक क्या यदि ऐसा
साहस कभी करो तुम?

पूर्वज थे पा गये वस्तुतः
मूल-तत्त्व मन-माना;
किन्तु असंख्यक शाखाओं का
है कुछ ठीक-ठिकाना?

नित्य नई वे फूट रही हैं,
आगे भी फूटेंगी,
भावी सन्ततियाँ भी सन्तत
अभिनव रस लूटेंगी।

यदि हार्दिक प्रस्ताव बुद्धि का
अनुमोदन पा जावे,
और समर्थक रहें प्राण, तो
कौन विरोधी? आवे!

करने में तो मरने में भी
है कल्याण स्वयं ही,
लौटो न तुम प्रमाण खोजने,
बनो प्रमाण स्वयं ही।

पीछे पितर पृष्ठ-पोषक हैं,
पर भविष्य तो आगे;
यदि अपना परिणाम न देखें,
तो हम अन्ध-अभागे।

वर्तमान, यह आयोजन है
निज भावी जीवन का;
कुछ अतीत-संकेत मिले तो
अधिक लाभ वह जन का।

भिन्नाहार-विहार उचित ही
समय समय के सारे;
समय समय की बुद्धि भिन्न है,
भिन्न विचार हमारे।

समयाचार विभिन्न, भिन्न हैं
युग-धर्मों की धृतियाँ,
आकृति-प्रकृति विभिन्न समय की,
भिन्न क्यों न हों कृतियाँ?

अपने युग को हीन समझना,
आत्महीनता होगी;
सजग रहो, इससे दुर्बलता
और दीनता होगी।

जिस युग में हम हुए, वही तो
अपने लिए बड़ा है;
अहा! हमारे आगे कितना
कर्मक्षेत्र पड़ा है।

हीन हो गया काल कौन-सा?
क्या घन-मन्द्र नहीं अब?
सायंप्रात, रात-दिन, ऋतुएँ
या रवि-चन्द्र नहीं अब?

सावधान! युग के अधर्म को
हम युग-धर्म न समझें;
कर्म नहीं, हम पतित आप, यदि
उनका मर्म न समझें।

वह अतीत पुरखों का युग था,
उसका क्या कहना है?
सुनो, किन्तु अपने ही युग में,
हम सबको रहना है।

जन्मे हैं हम उसी भूमि पर
उसी वायु-मण्डल में;
पर आगे की ओर हमारी
वृद्धि-सिद्धि पल पल में।

विगत हुआ तो विगतों का युग,
अपना तो प्रस्तुत है;
कितना नव्य-भव्य तुम देखो,
यह अपूर्व-अद्‌भुत है।

नये नये अध्याय खुले हैं,
नये पाठ हैं कितने;
कैसे काट-छाँट के कौशल,
और ठाठ हैं कितने!

बड़ा गोप-पद से क्या, तुम क्यों
'गोप गोप' कहते हो?
ऐसे ही तो ऋषि रहते हैं
जैसे तुम रहते हो।

मनुष्यत्व जन में ही रहता,
नहीं विशाल भवन में;
वह भी क्या दुर्लभ है तुमको,
जो तुम चाहो मन में।

पुरखों के प्रतिरूप आप हम
सम में और विषम में;
अधिष्ठातृ देवों के प्रति भी
कृतज्ञता हो हममें।

किन्तु कर्म-कौशल से यदि हम
अपना मुँह मोड़ेंगे,
वरुण देव तो हमें बहाये
बिना नहीं छोड़ेंगे!

बन्धु, कहीं यह कह न बैठना—
'हाला पिये हली है!'
सुनो तात, मतवाले की भी,
यदि वह बात भली है।

भय क्या सुरा पिये हो कोई,
उसे सुरा न पिये हो,
तो शुभ वह उस असुरापी से,
जो निज दम्भ किये हो।

न हो एक उन्माद, एक धुन,
एक लगन यदि जन में,
तो उस अप्रमत्त को लेकर
है क्या लाभ भुवन में?

देख रहा है, समझ रहा है,
किन्तु नहीं कुछ करता,
कर्मभूमि का भाररूप वह
डूब क्यों नहीं मरता।

तुम मेरे अनुगामी, यह तो
मुझ पर प्यार तुम्हारा;
पर विरोध करने का पहले
है अधिकार तुम्हारा।

सोचो-समझो, मेरी बातें
और उचित यदि मानों,
तो फिर तुम उनके प्रसार का
भार आप पर जानों।

कर्मों की खेती है जगती,
जैसी जिसने बोई;
देवों का भी कर्म नियन्ता
एक और ही कोई।

ताप न हो तो अग्नि-देव की
फिर क्या रही महत्ता?
वे न होत्रियों के हितार्थ भी
छोड़ेंगे निज सत्ता!

जो देवों का भाग, उसे हम
सादर उनको देंगे;
और ले सकेंगे जो उनसे,
हम कृतज्ञ हो लेंगे।

फिर भी दैवी बाधाएँ तो
आती ही रहती हैं;
मिल-जुलकर सम्पूर्ण प्रजाएँ
जिन्हें यहाँ सहती हैं।

सह सकना ही तो सर्वोपरि,
इष्ट और क्या भाई?
व्यापक विपदा से ही हमने
संघ-सम्पदा पाई।

बीती तृणावर्त्त की आँधी,
दावानल भी बीती;
कौन कहे, अब नहीं आयगी
कोई धार अचीती?

अपने मरने-जीने को भी
नियति-दृष्टि से देखें,
तो निश्चय हम उसे प्राकृतिक
परिवर्त्तन ही लेखें।

जहाँ आज गिरि कल गभीर जल,
यह भी उसकी लीला;
नित्य नई तब तो निज जगती,
जब परिवर्तन-शीला।

इन्द्र वृष्टि के अधिकारी हैं,
तो भागी हैं हम भी;
किन्तु शून्य को ही ताकें तो
जड़ हैं हम, जंगम भी।

अम्बु अन्ततः उर्वी का ही,
निश्चित वर्षण जिसका;
एक विभाजन मात्र व्योम का,
पर आकर्षण किसका?

अन्तरिक्ष के नहीं, किन्तु हम
उस वसुधा के वासी,
जिसके सरस-गन्ध-गुण के हैं
आप अमर आश्वासी!

धात्री वह गो-रूप-धारिणी,
शस्य-शालिनी, धरिणी;
लोक-पालिनी वह भव भव की
भार-वाहिनी, भरणी।

सर्वंसहा, क्षमा-क्षमता की,
ममता की, वह प्रतिमा।
खुली गोद उसकी जो आवे,
समता की वह प्रतिमा।

हल ही आयुध रहे हली का,
काढ़े उसके काँटे;
हरी-भरी उर्वरा रहे वह
तृण-तृण के भी बाँटे।

अपने व्रज की रज में ही तुम
सब विभूतियाँ पाओ;
दूध पियो अपनी गायों का,
वीर-बली बन जाओ।

एक एक, सौ सौ अन्यायी
कंसों को ललकारो;
अपनी पुण्यभूमि के ऊपर
धन-जीवन सब वारो।

यही हमारी प्रमुख देवता,
कभी न भूलो इसको;
कहो दूसरा देव कौन है,
आहुति दें हम जिसको?

नहीं एक आकाश-निवासी
वह अधिदैवतपन तो;
कंकर में भी शिव-शंकर हैं,
गिरि है गोवर्द्धन तो!

पुरखे यज्ञ-याग करते थे,
त्याग भाव था जिनमें;
किन्तु आज के यज्ञ देख लो,
शेष रहा क्या इनमें?

दारुण हिंसा और दम्भ ही
दिखलाई पड़ते हैं;
तृष्णा बुझती नहीं, रुधिर के
झरने-से झड़ते हैं!

अपनी प्रवृत्तियों का पोषण
मिष देवी - देवों का!
अमृत नहीं, वह मृतक-पिण्ड है
विष देवी - देवों का!

राजस भोग करें वे, जिनका
साहस हो या बस हो;
धर्म सदा सात्विक है, चाहे
कर्म कभी तामस हो।

ब्राह्मण था या वृक वह, जिसने
दया न लज्जा सोची,
हृदयवती गृहिणी हरिणी-सी
धर कर वहीं दबोची!

यही अभागा मन्त्र-जाल में
स्वर्ग फँसा कर लेगा?
वैतरणी का चक्र-नक्र क्या
इसे उबरने देगा?

इष्ट एक हय-मेध-हेतु था
व्यापक विजय जहाँ पर,
एक यूप से बँधे पड़े हैं
सौ पशु-मेध वहाँ पर!

स्वयं शृगाल हुए हम, फिर भी
उच्च मनुज-कुलमानी;
यज्ञ-पुरुष को छोड़ हिंस्र-पशु
पूज रहे बलिदानी!

यज्ञ-वेदियाँ हैं वे अथवा
कौटिक-कुटियाँ सारी?
व्यंजन नहीं, देव देखेंगे
श्रद्धा-भक्ति तुम्हारी।

कम क्या घृत-दधि-दुग्ध-शर्करा,
देव-अन्न ओदन ही;
श्रुति न विरोध करे तो समझो
उसका अनुमोदन ही।

जिसको जब जो प्राप्य, उसी का
वह नैवेद्य चढ़ावे;
निज रसना-लोलुपता कोई
इस मिस से न बढ़ावे।

नहीं तत्त्वतः कुछ भी मेरे
आगे जीना-मरना,
किन्तु आत्मघाती होना है
घात किसी का करना।

गो-द्विज-द्वेषी कंस मूल ही
मख का मेट रहा है;
मैं कहता हूँ, स्वयं काल को
वह अब भेट रहा है।

आज 'गोप हम' यही गर्व से
तुमको कहना होगा;
और आत्मबलि देने को भी
उद्यत रहना होगा।

न्याय-धर्म के लिए लड़ो तुम,
ऋत-हित समझो-बूझो,
अनय राज, निर्दय समाज से
निर्भय होकर जूझो।

राजा स्वयं नियोज्य तुम्हारा,
यदि तुम अटल प्रजा हो;
धात्री नहीं, किन्तु बलिदात्री
बस अन्यथा अजा हो!

प्रस्तुत रहो, कृष्ण नूतन मख
रचने ही वाला है;
अब निर्मम विद्रोह मोह पर
मचने ही वाला है;

रही चुनौती आज हमारी,
अधिक क्या कहूँ, यम को;
नयी सृष्टि के लिए प्रलय भी
प्रेक्षणीय हो हमको!

ग्वाल-बाल

अरे, पलट दी है काया ही
इस केशव ने काल की;
बलिहारी, बलिहारी, जय जय
गिरधारी - गोपाल की।

अति कर दी अच्युत ने आहा!
भर दी गति-मति और ही;
कर लेता है ठीक ठिकाना
वह चाहे जिस ठौर ही।
नागर-नटवर होकर भी वह
हम सबका सिरमौर ही;

हम हाथी-घोड़े हैं उसके;
यमुना उसकी पालकी!
बलिहारी, बलिहारी, जय जय
गिरधारी-गोपाल की!

हम मृग, वह मद, किन्तु अमर हैं
हम उसके सम्बन्ध से;
भागे भय के कीट आप ही
उस गुण-धर-के गन्ध से।
गिरे असुर आ आकर कितने
द्रोह-मोह-वश अन्ध-से;

तुलना हो सकती है उसकी

छाती से किस ढाल की?
बलिहारी, बलिहारी, जय जय
गिरधारी-गोपाल की।

मुरली है अपूर्व असि उसकी,
विजयी है वह प्रेम का;
वह गोधन का धनी, हाथ है
उस उदार का हेम का।
शिखि-शेखर को ध्यान सदा है,
सबके योग-क्षेम का।

राधा चिढ़े, श्यामता हरि की
है उसके विधु-भाल की!
बलिहारी, बलिहारी, जय जय
गिरधारी-गोपाल की।

खेल उसी का, वही खिलाड़ी
और खिलौना भी वही;
खेलें उसके संग सदा हम,
इष्ट हमें बस है यही।
हार-जीत का निर्णय राधा
करती रहे सही-सही;

चिन्ता करे बलाय हमारी
जगती के जंजाल की!
बलिहारी, बलिहारी, जय जय
गिरधारी-गोपाल की।

चोरों की है या विनोद के
धनियों की यह मण्डली?
घर का भद्र जहाँ भेदी है,
वहाँ किसी की क्या चली।
चढ़ जाने में कुशल और हम
कूद भागने में बली;

रस की तो है भली लूट भी,
सो भी ऊँची डाल की!
बलिहारी, बलिहारी, जय जय
गिरधारी-गोपाल की।

उस दिन वहीं हमें न मिला कुछ,
यज्ञ हो रहा था जहाँ;
द्विज न पसीजे, द्विजस्त्रियाँ ही
बनी अन्नपूर्णा वहाँ।
माँ की जाति किसी बच्चे को
भूखा देख सकी कहाँ?

भेजा उनके निकट, सूझ थी
यह किस बुद्धिविशाल की?
बलिहारी, बलिहारी, जय जय
गिरधारी-गोपाल की।

हाय! एक द्विज ने दानव बन
निज देवी को धर लिया;
क्या चाण्डाल रूप धारण कर
कुछ न हमें देने दिया!
मरी वराकी, किन्तु मरण ने
उसके मंगल ही किया;

भागी हिंसा और भीति वह
स्वयं इन्द्र के जाल की!
बलिहारी, बलिहारी, जय जय
गिरधारी-गोपाल की।

उठा लिया सचमुच पहाड़ ही
गौरवमय गोविन्द ने;
फूला इन्द्र और उसका रस
पिया मुकुन्द-मिलिन्द ने!
झलकाये कुछ कण हिम-से बस

उसके मुख-अरविन्द् ने;

गोवर्द्धन की दरियाँ थीं या
पुरियाँ वे पाताल की?
बलिहारी, बलिहारी, जय जय
गिरधारी-गोपाल की।

इतना करके भी बस हँस कर
यही कहा बलवीर ने—
'राधा जो न भरे नयनों में,
प्रलय किया था नीर ने!'
किन्तु पुलक ही दी राधा के
कोमल कुसुम-शरीर ने;

फिर भी तिरछी होकर उसने
भृकुटी कुटिल-कराल की!
बलिहारी, बलिहारी, जय जय
गिरधारी-गोपाल की।

वह गरुड़ध्वज मत्स्य न था, जो
चला वकासुर लीलने;
अघ-अजगर से हमें बचाया
उसी अलौकिक शील ने।
विष ही झाड़ दिया कालिय का
सहृदय सदय सलील ने;

आग पिये था, इस पानी से
हुई शान्ति ही ज्वाल की!
बलिहारी, बलिहारी, जय जय
गिरधारी-गोपाल की!

यमुना बहा ले गयी, पानी
उतर गया सुरराज का;
अन्त प्रलय का भी है आहा!

और वही दिन आज का।
हरियाली ही हरियाली है,
जब नव जन्म समाज का;

अब फिर बजे चैन की वंशी
उस माई के लाल की!
बलिहारी, बलिहारी, जय जय
गिरधारी-गोपाल की।

निर्मल-नीलाकाश हासमय
चमके चन्द्र-विकास में;
दमके कल-जल, गमके थल-थल
कोमल कुसुम-सुवास में।
लय से बँधा अराल-काल भी
डूबे रासोल्लास में;

घूमें भूमण्डल भी गति से
सम भर कर स्वर-ताल की!
बलिहारी, बलिहारी, जय जय
गिरधारी-गोपाल की।

नारद

हरिःओइम, पर इसके आगे?
शान्ति? नहीं हो, शान्ति नहीं।
शान्ति अन्त में आप आयगी,
व्यर्थ जन्म, जो क्रान्ति नहीं।

लोक एक नाटक है प्रभु का,
शोक रहे या हर्ष रहे,
जिसमें अपना स्वाँग सफल हो,
यहाँ एक संघर्ष रहे।

वह तो एक धूलि-कण में भी,
कहते हैं अस्तित्व जिसे;
शुष्क पत्र-सा उड़ते जाना,
जीना कहते नहीं इसे।

जीवन में भी जब जीवन हो,
तब सजीवता है जन की;
नहीं प्रवाह मात्र में गति है,
उठें तरंगें भी मन की।

अपने प्रभु का कान लगा जन,
विदित विनोद-विशारद मैं;
पुत्रों से निश्चिन्त सदा को,
पितर-जनों का नारद मैं।

वृद्ध पिता का सुस्थिर यौवन,
नहीं नहीं, चिर शैशव मैं;
चिर चंचल, क्रीड़ा-कौतुकमय,
और नित्य ही नव नव मैं।

वादी-संवादी स्वर लेकर,
सीधा सभी बजाते हैं;
पर प्रतिवादी स्वर भी मेरी
वीणा में बज जाते हैं।

बिना विवादी के विनोद क्या,
बस प्रयोग सर्वत्र बड़ा;
बनें भैरवी भी मृदु-मधुरा,
मेरा माध्यम रहे कड़ा।

एक पुरुष को छोड़, प्रकृति की
परवशता सबमें हेरी;
चोरी न करे चोर, किन्तु क्या
छोड़ेगा हेरा-फेरी?

मुझे प्रणाम करे तो वह भी
शुभाशीष मुझसे पावे;
पर यह अच्छा नहीं, धनाधिप
जो सोता ही रह जावे।

आल्हादों के साथ भले ही
आवे क्यों न विषाद कहीं,
मेरे इस वसुधा-कुटुम्ब में
आ न जाय अवसाद कहीं।

कौशल दिखला सकते हैं हम
कठिनाई में पड़ कर ही;
बने विजेता और बड़े, सो
बाधाओं से लड़ कर ही।

जिसमें पापी के पापों का
घट झट से झट भर जावे;
पृथ्वी और स्वयं पापी भी
परित्राण चट पट पावे।

कर देता हूँ यथाशक्ति कुछ
योग उपस्थित मैं ऐसे;
कर दूँ अन्तर्दयादृष्टि से
देखा अनदेखा कैसे?

बिगड़े का सुधार करने से
बढ़ कर कोई कार्य नहीं;
क्या वाल्मीकि-समान व्यक्ति का
नारद ही आचार्य नहीं?

किन्तु उसे उपदेश व्यर्थ है,
जो विनाश से वाध्य हुआ;
तूर्ण मरण ही मंगल उसका,
जिसका रोग असाध्य हुआ।

अरे, आग भी कभी लगानी
पड़ जाती है हमें यहाँ;
कूड़ा-कर्कट ही न अन्यथा
भर जावे फिर जहाँ-तहाँ।

आग लगाकर हमीं दौड़ते
पानी की झाड़ी को भी,
कटा खेत जलता जलता जो
जला न दे बाड़ी को भी।

पानी है तो बरसेगा ही,
है जो आग, लगेगी ही;
जो समीर है सरसेगा ही,
है जो ज्योति, जगेगी ही।

सीमा का वह द्वन्द्व अहा हा!
इस असीम के ही नीचे;
नारद तो निर्द्वन्द्व जायगा,
पर क्या ये आँखें मींचे?

देख रहा हूँ चाल काल की,
मैं क्यों उसमें आप फँसूँ?
भीतर से रोना आता है,
बाहर से ही क्यों न हँसूँ?

वह अलज्ज, जिसके हँसने में
कोई रोना छिपा न हो;
हास मूल, परिहास फूल, उप-
हास धूल, भूलो न अहो!

जीवन खेल नहीं, अथवा यदि
जीवन खेल नहीं तो फिर?
किन्तु खेल में भी तुलना का
मिले न मेल कहीं तो फिर?

पड़ती रहे हमीं पर दाई,
यह भी कोई खेल भला?
सँभल खिलाड़ी, आज तुझे मैं
दौड़ाने की ठान चला!

देवि देवकी, एक बार फिर
तुझे कष्ट करना होगा;
वही क्रूर का कारागृह माँ,
फिर तुझको भरना होगा।

वेणु और व्रजबालाओं में
तेरा नटनागर भूला;
मुझे क्षमा कर, जाता हूँ मैं
कंस-निकट फूला फूला।

देवकी

आधी रात जहाँ दिन में भी,
वहाँ रात, फिर पूरी!
किसे ज्ञात है, कहाँ हमारे
फिरते दिन की दूरी?

फिर भी किस निश्चिन्त भाव से
सोते हो तुम स्वामी,
वही जानता है इस जी को,
जो है अन्तर्यामी।

तब भी काल बीत जाता है,
जब जुग-सा पल-छिन है;
जिससे हम जी जायँ हाय! वह
मरना महा कठिन है।

नाथ, कंस के हाथ उसी दिन
यदि मैं मारी जाती;
यह मरने से अधिक आपदा
तो तुम पर क्यों आती?

दासी के पीछे दुख पर दुख
सहना पड़ा तुम्हें है;
पुनरपि रुद्ध गुहा-से गृह में
रहना पड़ा तुम्हें है।

पर क्या ही विश्वासी हो तुम,
जो अब भी आनन्दी;
हे मेरे राजा, तथापि तुम
वही अराजक बन्दी।

बन्दी जो जीवित रह कर भी
जीवन से वंचित है;
धन से, जन से और स्वयं जो
निज तन से वंचित है।

प्रखर चेतना, आह! आग-सी
जिसमें जाग रही है;
फिर भी जड़ीभूत लक्कड़-सा
जकड़ा पड़ा, वही है।

उसका घर, घिर जाय वायु भी
यदि उसमें घुस जावे,
टकरा कर पाषाण-भित्ति से
वही साँस फिर आवे।

तब भी कहाँ कहाँ मन उसका
फिरता मारा-मारा,
किन्तु अन्त में उस तापस की
वही कुटी यह कारा।

सूर्य-चन्द्र की झलक इसी से
उसे दिखाई जाती,
है,—पर उसके लिए नहीं वे,
देखे वह अभिघाती।

अभिघाती, सच्चा या झूठा
दोष लगा है उस पर,
इसीलिए भय और साथ ही
रोष जगा है उस पर।

उसे मारना या मर मिटना,
क्षण क्षण सूझ रहा है;
तो भी तिल तिल मरता है वह,
कण कण जूझ रहा है।

उसके स्वजन बन्धु भी बाहर
बँधे बँधे रह पाते;
सबकी सुनते हैं, पर अपनी
नहीं कहीं कह पाते।

आँखें और कान रहते वह
नहीं देख-सुन सकता;
बोल नहीं सकता मुँह रहते,
मन-मन गुन-बुन सकता।

बिछड़ा ही वह नहीं वर्ग से,
मृग-सा जाल-जड़ित है;
नहीं तड़प भी पाता, यद्यपि
भीतर भरी तड़ित है।

कैसे, कहाँ छूट कर जावे,
आया है वह पकड़ा;
श्वास हृदय से, हृदय देह से,
देह निगड़ से जकड़ा!

आगे रुद्ध कक्ष, असिधारा,
प्रहरी, परिखा गहरी;
किन्तु अन्त में निकल जायगा
वह मौजी, वह लहरी।

जब पुकार होगी अदृश्य से—
अरे निकल आ, आ जा;
जीता उसे मारने को तब
रोक सकेगा राजा?

राजा! प्रभो, यही राजा है
तेरा प्रतिनिधि? धिक्-धिक्!
क्या इस राजा और प्रजा का
वही एक विधि? धिक्-धिक्!

धिक् तुझको, तेरे राजा को,
वह है स्वेच्छाचारी;
अविचारी, अन्यायी, बर्बर,
केवल पशुबल-धारी।

हाहाकार हमारा है सो
उसका बजता बाजा;
आँखें हैं तो देख अरे तू,
यही न तेरा राजा?

बोल सके तो बता, इसी ने
तेरी सत्ता पाई?
सुन पावे तो इस नृशंस की
सुन तू दुरित-दुहाई।

धिक् निरीह-निर्गुणता तेरी!
अरे, धधक उठ, भक हो;
तू समर्थ-साकार, देख कर
यह मदान्ध भौचक हो।

अरी भूमि, तू आज कहाँ है,
नहीं जानती यह मैं;
मूक न रह, ले मेरी वाणी,
बोल उठूँ क्या कह मैं?

कहाँ गया हे राम, आज वह
तेरा राज्य, अरे रे!
मरे—न, मारे गये अये! वे
छै छै बच्चे मेरे!

बच्चे मेरे—मेरे बच्चे,
बोलूँ मैं क्या जै-जै,
मेरा मन तो चिल्लाता है
एक, दो,—नहीं, छै-छै!

ओ हो, मृदुल मुकुल से भी वे
मसल दिये इस खल ने;
मांसपिण्ड, मक्खन के लौंदे
निगल लिये इस खल ने!

उनमें क्या था? श्वास मात्र ही
था बस आता-जाता;
ललित तन्त्र-सा, चलित यन्त्र-सा
फलित मन्त्र-सा भाता।

किन्तु क्या न था उन बच्चों में?
रूप-रंग थे रूरे,
जीवन अदुरित, हृदय विस्फुरित,
अंग अंकुरित पूरे।

दृष्टि डाल जनने वालों को,
हनने वालों को भी,
देखा नहीं उन्होंने पल भर,
वे हों चाहे जो भी।

दिखा गये वे तो बस अपनी
एक झलक ही हलकी;
प्रेम-वैर दोनों की सीमा
इतने ही में छलकी!

निष्फल मेरा प्रेम हो गया,
वैर फला वैरी का;
मेरा कुछ न चला, क्या चलता,
हाथ चला वैरी का।

पर उनके अपराध बता दे
कोई झूठे-सच्चे?
दोष यही उन निर्दोषों का—
वे थे मेरे बच्चे।

मेरे बच्चे, जैसे आये
चले गये वैसे ही,
क्यों आये, क्यों गये अरे, वे
ऐसे के ऐसे ही?

न तो यहाँ देखा न सुना कुछ,
न कुछ कहा निज मुख से,
रहे अपरिचित ही अनीह वे
इस भव के सुख-दुख से!

हा भगवन्! हो गयी व्यर्थ वह
प्रसव-वेदना सारी;
लेकर यह अनुभूति-चेतना
कहाँ रहे यह नारी?

उड़ता है छै टूक कलेजा,
कर हैं मेरे दो ही;
किसे किसे थामूँ, तू ही कह,
हे मेरे निर्मोही!

मेरे बच्चे, भूमि भार थे?
और कंस गौरव है?
तब तो इस धरती से अच्छा
लाखगुना रौरव है।

ऐसे मीठे थे मेरे फल,
कंस खा गया कच्चे!
कौन कहे, कैसे क्या होते,
बच कर मेरे बच्चे?

किन्तु नहीं, वे नहीं गये, ये
अब भी यहीं बने हैं,
जाते कैसे कहीं, अन्ततः
मेरे ही न जने हैं।

इस अँधियारे में दीपक-से
ये क्या दमक रहे हैं?
मुझे निरखते हुए नेत्र ये
कैसे चमक रहे हैं!

अब तो बड़े हो गये आहा!
आओ मेरे हीरे!
किन्तु तुम्हारे तात सो रहे,
उतरो धीरे - धीरे।

मेरे षण्मुख-कार्त्तिकेय, तुम
मुझे घेर कर घूमो;
आओ, अब तो तुम्हें चूम लूँ
और मुझे तुम चूमो।

पर अब भी बन्धन में हूँ मैं,
विवश, देख लो, बेटा;
और कंस उच्छृंखल अब भी
सुख-शय्या पर लेटा।

जाओ मेरे पूत-प्रेत, तुम
प्रथम उसे लग जाओ,
सुख से सो न सके वह देखो,
'हूँ' कर उसे जगाओ!

अरे, तनिक ठहरो, ठहरो तुम
अब भी छोटे छोटे;
उधर कंस के भाव हुए हैं
पहले से भी खोटे।

लो, मरवाया तुम्हें दुबारा
हा! माँ होकर मैंने;
फिर भी खोया, पाया था यह
तुमको खोकर मैंने।

यह कारा, यह अन्धकार, यह
बन्धन, सभी सहूँगी;
भूल गयी, वह बात भूल कर
अब मैं नहीं कहूँगी।

स्वामी! स्वामी! उठो, हाय क्या
मैंने सपना देखा?
जगी-बुझी अपने प्रकाश की
अभी छै मुखी रेखा!

चौंको मत, पागल हूँ? कैसे?
मुझको सभी स्मरण है;
भूला उनका जन्म मुझे या
भूला मुझे मरण है?

वे तो चले गये, पर उनका
घातक अब भी बैठा;
चलो, दिखा दूँ पुण्य गये, पर
पातक अब भी बैठा!

हाँ, हाँ धर लो, मुझे अंक में
भर लो मेरे भोगी!
योगी हो तुम, संयोगी भी
और तुम्हीं उद्योगी।

इसी कोख से जनती जाऊँ
उन्हें निरन्तर तब लौं,
ध्वंस न कर दें कंस-राज्य वे
मेरे जाये जब लौं।

अथवा नहीं ठहर सकती मैं,
मास दूर, नौ दिन भी;
पड़े नहीं क्या मेरे मत्थे
कुग्रह कुटिल, कठिन भी?

देखो, वही भाल यह मेरा,
अब यह क्या फूटेगा?
छोड़ो, छोड़ो, द्वार-पटल यह
अभी अभी टूटेगा!

क्या कहते हो, जना जा चुका
कंस-काल वह काला?
काला, अहा! वही तो मेरे
अन्तर का उजियाला।

घन-सा काला, जाग रही है
जिसमें विद्युज्ज्वाला;
वह लीलामय मेरा लाला,
हाँ, वह मेरा लाला।

सुदृढ़-भित्ति पर जब गवाक्ष से
आभा आ पड़ती है,
देखा करती हूँ मैं, उसकी
झाँई-सी झड़ती है!

लेखा करती हूँ मैं मन मन,
अब आया, तब आया;
किन्तु कहाँ आया वह मेरा
आशा-धन, कब आया?

अरे, देख तू यहाँ रही यह,
तेरी दुखिया मैया;
बोल कहाँ तू कुँवर कन्हैया,
मेरे राजा भैया!

सुनूँ तनिक मैं भी वह मुरली,
देखूँ, दोहन तेरा;
रहे न मुझको शंखनाद ही
मेरे मोहन, तेरा।

मेरे तात-चरण की, मेरे
पति-दैवत की मेरी,
मेरी जाति और ओ मेरी
धरती माता, तेरी—

यह बन्धन-बाधा अब क़ब तक?
नहीं अधिक अब देरी;
भाई कंस, चेत जा तू भी,
यह काले की फेरी!

नाथ! उसी की बात करो अब,
सुनूँ तनिक मैं मन से;
वही मुक्ति देगा बस हमको
इस दारुण-बन्धन से।

अब अपमान छूटने में भी
क्रूर कंस के द्वारा;
मेरा लाल छुड़ा न सके तो
भली मुझे चिरकारा!

उग्रसेन

रानी,—नहीं नहीं, हम-तुम क्या
अब राजा-रानी हैं?
झूठे पद स्वीकार करें वे
जो मिथ्या मानी हैं।

किन्तु प्रजा भी उसकी कैसे
हम अपने को मानें,
संगिनि, हम दोनों अब क्या हैं
यह ईश्वर ही जानें!

फिर भी रहें पिता-माता हम,
सुत न रहे सुत चाहे;
वह भूला, हम भी भूलें तो
किसको कौन निबाहे?

रहने दो आक्रोश आज यह,
ओह! काल को देखो,
अब भी वह अपना है, अपने
मोह-जाल को देखो!

धरा स्वयं दोषों ने उसको,
तुम क्या दोष धरोगी?
शान्ति-पाठ ही करो, व्यर्थ क्यों
उस पर रोष करोगी।

आज वही दयनीय वस्तुतः,
अक्षम चाहे हम हों,
वह यदि निर्मम हुआ, कहो तो
क्या हम भी निर्मम हों?

न दो उसे अभिशाप, अन्ततः
तुमने जिसे जना है;
स्वत्व मात्र लेकर ही तो वह
राजा आज बना है।

योग्य वयस्क व्यक्ति की थाती
कोई उसे न देवे,
तो उसका अधिकार, उसे वह
बलपूर्वक ले लेवे।

उसका राज्य सौंप कर उसको
यदि हम वन को जाते;
तुम्हीं विचारो, तो हम क्यों इस
कारागृह में आते?

लोभ वस्तुतः रहा हमारा,
क्षोभ वृथा हम मानें,
न ये कहाँ बैठें सोचो, यदि
हटें न यहाँ पुराने?

बात वस्तुतः है इतनी ही,
कहता मेरा जी है—
उसने आतुरता, तो हमने
दीर्घसूत्रता की है।

जहाँ उपेक्षा हुई काल की
वहाँ अकाल न हो क्यों?
पल पल की तुम कुशल मनाओ,
मनुज कहीं, न रहो क्यों?

ओहो! दैत्य जाना है तुमने?
तुम यह क्या कहती हो?
सुध करके फिर व्यर्थ प्रसव की
पीड़ा क्यों सहती हो?

दैत्य-पिता होना भी अपना
मैं सहर्ष सह लेता—
आज कहीं प्रह्लाद पुत्र ही
लोक उसे कह देता!

सच पूछो तो ऐसा अद्भुत
अपना यह मानव ही,
कभी देव बन जाता है जो
और कभी दानव ही।

मैं कहता हूँ, यदि मनुष्य ही
बने मनुष्य हमारा,
तो कट जाय देव-दैत्यों का
कलह-कलुष यह सारा।

होते ही मर गया क्यों न वह!
अरे, उसे जीने दो;
अवसर दो, अवसर दो हे हर!
हरे! उसे जीने दो।

अद्भुत बली, विचित्र साहसी,
हुआ न होगा ऐसा;
जैसा करना उचित, करे यदि
एक बार वह वैसा।

पापी भी न मरे, मर कर वह
हाय! कहाँ जावेगा?
उलटा नया जन्म ले लेकर
लौट यहीं आवेगा।

तभी हमारा त्राण, मुक्ति जब
स्वयं उसे मिल जावे;
यही मनाओ, पंक-पंक में
एक पद्म खिल जावे।

भुजबल का ही विश्वासी वह,
सत्ता का साधक है;
पर शिवहीन शक्ति का साधन
बाधक ही बाधक है।

दुष्कर करने में ही उसकी
बुद्धि गर्व करती है;
नग्नशक्ति शिव के ऊपर ही
उन्मद पद धरती है।

दुर्लभ है निश्चय वह, उसमें
सहज शूरता जैसी;
फिर भी एकाकिनी शूरता
हाय! क्रूरता जैसी।

विफल वीरता किसी वीर की,
यदि वह धीर नहीं है;
कीच मचेगी उस पानी में,
जो गम्भीर नहीं है।

उसकी निन्दा करें भले ही
पीछे निर्बल नर भी,
रह सकता है किन्तु उपेक्षा
करके क्या ईश्वर भी?

अपने लिए अन्त में इतना
गर्व उसे निश्चय है,
किन्तु हृदय में यही सोच कर
मुझको भय-अति भय-है।

क्षमा करे उसको न तत्समा
वहिन देवकी दीना,
पर माँ होकर हो सकती हो
तुम क्या ममता-हीना?

देख मुझे बन्धन में, तुमसे
रहा नहीं यदि जाता;
तो क्या उसका पिता नहीं मैं,
तुम ज्यों उसकी माता?

कारागृह में हैं हम दोनों,
गिनो लाभ ही इसको,
और नहीं तो बाहर रहकर
मुँह दिखलाते किसको?

कुछ सुन पड़ता नहीं हमें अब,
कोई क्या कहता है;
यह सुविधा भी सहज किसी की
दैव कहाँ सहता है?

सहें भले ही हम यह बन्धन—
पीड़ा - व्रीड़ा - दायक,
किन्तु सहेगा इसे कहाँ तक
अपना मुक्ति-विधायक।

मुझे दीखता है, फिर हमको
बाहर जाना होगा।
उठे जहाँ तक, इस जीवन का
भार उठाना होगा।

वास शान्त-एकान्त हमारा,
समय मनन-चिन्तन का,
मंगल इससे अधिक और क्या
अब मुझ जैसे जन का?

तदपि हाय! औचित्य हीन यह,
यही दुःख है मन में
विधि से जो सहधर्म, अवधि से
वही कुकर्म भुवन में।

तुम्हें क्रोध आता है रह रह,
किन्तु मुझे तो रोना,
और दैव हँसता है उस पर,
अब किससे क्या कहना?

भय देकर ही कोई भव में,
यदि चिर जय पा सकता,
तो नय और विनय की किसको
होती आवश्यकता।

जला जा रहा आप काठ-सा
अग्निरूप-धारी वह;
भस्म मात्र ही होने को है
उद्धत अविचारी वह।

यदि वह भस्म रमा कर कोई
कहीं साधु बन पाता;
तो विभूति कह कर उसको भी
मैं कृतार्थ हो जाता!

जो सत्ता-मदमत्त! आज भी
आँखें खोल अभागे!
वह साम्राज्य-स्वप्न जाने दे,
जाग, सत्य यह आगे।

जो आतंक दिखाया तूने,
देख उसी को अब तू;
और टूटने को प्रस्तुत रह,
लच न सके हाँ, जब तू।

कंस

नियति कौन है? एक नियन्ता
मैं ही अपना आप;
कर्म-भीरुओं का आकुंचन,
एक मात्र यह पाप।

धर्म एक, बस अग्नि-धर्म है,
जो आवे सो छार!
जल भी उड़े वाष्प बन बन,
मल भी हो अंगार!

फूँक-फूँक कर पैर धरोगे
धरती पर तुम मूढ़?
तो फिर हटो, भाड़ में जाओ,
पाओ निज गति मूढ़।

मैं निश्चिन्त बढ़ूँगा आगे,
पहने पादत्राण;
बचें कीट-कण्टक, यदि उनको
प्रिय हैं अपने प्राण।

बनता नहीं ईंट-गारे से
वह साम्राज्य विशाल;
सुनो, चुने जाते हैं उसमें
रुधिराप्लुत कंकाल!

लिखो भले उसकी भीतों पर
दया-धर्म के चित्र;
सदा भुलाते रहें जनों को
जिनके चटुल चरित्र।

देख कहीं दो बूँद नेत्र-जल
तुम गल गये तुरन्त;
जान लिया तो बस मिट्टी के
पुतले ही तुम सन्त!

ठौर अंक में पा सकती है
कोई मृदुता-मूर्ति;
किन्तु हृदय में एक कठिनता
कर्मठता की पूर्ति।

जितने भी बन्धन हैं, वे सब
अबलों के ही अर्थ;
बन्धन बन्धन ही हैं, तोड़ो,
यदि तुम सबल समर्थ।

ठहर ब्रह्मवादी, बकता है,
तू क्या अब्रह्मण्य?
तेरा ब्रह्म और तू दोनों
मेरे निकट नगण्य।

अटल एक ही न्याय जगत में,
वह है मत्स्यन्याय;
और एक ही असमर्थों का
है बस मरण उपाय।

चुप रह, भावि बुद्ध के बच्चे।
ले तू अपनी बाट;
नागर बन कर भी क्या तूने
छोड़ी वन की चाट?

मैं हूँ अहंब्रह्म-विश्वासी,
परब्रह्म है कौन?
नर ही नारायण है, नर मैं,
सुनो इसे सब मौन।

भाग्यवान भगवान आप मैं,
सब हों मेरे भक्त;
नियम मानते हैं अशक्त ही,
रचते उन्हें सशक्त।

बढ़ा बढ़ा कर जन्म जन्म में,
मैं मन के संस्कार,
कर सकता क्या नहीं एक दिन
अग-जग पर अधिकार?

क्या कर सकता नहीं आप मैं?
मेरा कर्त्ता कौन?
कोई सिद्धि, जिसे मैं चाहूँ,
उसका हर्त्ता कौन?

साँप न जाय न लाठी टूटे,
बुरी नहीं यह रीति;
किन्तु कापुरुषता है फिर भी,
कूटनीति क्या नीति?

टूट जाय टूटे जो लाठी,
बने रहें भुजदण्ड;
देखे मुझे लपेट नाग भी,
करूँ शुण्ड सौ खण्ड।

कलाकार था वह, जिसने की
नग्न रूप की सृष्टि;
किन्तु नग्नता पर ही पहले
पड़ी सत्य की दृष्टि!

कुछ भी गोपन रहे न मुझको,
देखूँ सब प्रत्यक्ष।
झीना भी आवरण न रक्खे,
मेरा कोई लक्ष।

कहने भर के लिए एक मिस
ले रखना है ठीक;
बनें प्रकृति-पन्थी नंगे भी
नाचो तुम निर्भीक।

सबका यहाँ समर्थन देखा,
सबका यहीं विरोध;
पियो मोद से, बना रहे बस
तुमको मेरा बोध।

बाधक और वृद्ध हो तुम तो
बद्ध रहो चुपचाप;
रहो भले ही फिर तुम मेरे
बहनोई या बाप!

अरी देवकी, क्यों फिरती है
मेरे आगे दीन?
राजा का आत्मीय कौन है,
जो है आज्ञाधीन।

श्री फल फोड़ फोड़ कर कितने
बलि देते हैं लोग;
कुछ शिशुओं के सिर की बलि दे
साधा मैंने योग।

मैं शिशुपाल नहीं, सोचें वे,
सिहरें जिनके गात्र;
जरासन्ध का जामाता मैं,
वह सेनापति मात्र।

जैसे फल वैसे ही सिर भी
काट सके सो धार;
पुण्य-पाप क्या है, पौरुष ही
एक मात्र है सार।

रोया करें क्यों न किन्नर-कवि
कह कर मुझे नृशंस;
किन्तु अपौरुषेय क्या उनका,
यदि अमानुषिक कंस?

तुम विश्वास करो तो कोई
क्यों न करेगा घात?
दिखला दी वसुदेव-देवकी
दोनों ने यह बात।

घुसी दया बनकर दुर्बलता,
हट दुर्बलते, दूर;
कंस बली है, कहे भले ही
कोई उसको क्रूर।

फिर भी इसे मानता हूँ मैं,
भय का नाम परोक्ष;
वे शिशु फिर न जियें, पाकर भी
मेरे हाथों मोक्ष।

वे मेरे देखे, पर ओ हो!
उनकी आकृति आज!
धूमकेतु में पलट गया क्या
वह नक्षत्र-समाज!

सर्प-रूप धर क्लिन्न केंचुए
करते हैं फुंकार;
अथवा ये झंझा के झोंके
भरते हैं हुंकार।

दीप-शिखा बढ़ बुझी अचानक
यह कैसा उत्पात?
क्या सचमुच मैं सिहर उठा हूँ,
यह लज्जा की बात।

आवे, आवे, जो चाहे सो
दिखलावे निज नाच;
बैठा हूँ मैं आप तिमिर में
बनकर प्रेत-पिशाच।

जाओ बच्चो, तुम अनन्त में
विचरो, यही विवेक;
देखूँ उसको, जो तुममें से
बच निकला है एक।

सुना, किशोर मात्र है केशव,
सम्मुख नहीं परन्तु;
तभी जान पड़ता है मुझको
एक बड़ा सा जन्तु।

धिक्, फिर भी क्या चौंक गया मैं,
ढीला पड़ा किरीट!
अच्छा देखूँ क्यों न बुला कर
कैसा है वह कीट।

यह घन गरजा, हाँ, समुचित है
इसका तर्जन-नाद,
सचमुच मैं कर गया उपेक्षा,
मुझसे हुआ प्रमाद।

और इसी से वासुदेव बच
बड़ा हो गया आज;
भीति न जगती हो, पर मुझको
लगती है यह लाज।

धर बैठा वह मोरमुकुट भी,
शासन-दण्ड सुवेणु;
नारद का कहना है—'मेरी
वीणा है बस रेणु।'

कहते हैं, कुछ चमत्कार भी
दिखलाता है कृष्ण,
उसका मरणामृत पीने को
मैं भी आज सतृष्ण।

धड़कन नहीं, चला है मेरे
भीतर एक प्रवाह;
यह क्या, यह क्या चमकी चपला—
अम्बर की असि आह!

भित्ति-चित्र भी चलते-से क्या
दीख गये क्षण काल?
द्वापर ही द्वापर है मेरे
चारों ओर अराल।

अरे, कौन है? बुला शीघ्र ही,
आवे वह अक्रूर;
कह दे, बाहर जाना होगा,
पर थोड़ी ही दूर।

भ्रम हो, भय हो, अप्रत्यय हो,
संशय, अनृत, यथार्थ,
जो भी हो, आ जावे खुलकर,
देखे फिर पुरुषार्थ।

अक्रूर

नहीं मनोरथ के कुरंग ही,
रथ-तुरंग भी भटके,
पर मरीचिका में लटके या
इस मधुवन में अटके?

आ पहुँचा वृन्दावन यह मैं,
क्या ही पुण्य-प्रभा है;
धाम यही यमुना रानी का;
मथुरा राज-सभा है।

श्याम समाया कालिन्दी में,
या उसमें कालिन्दी?—
वेला ने जिसके माथे पर
दी सेंदुर की बिन्दी।

कौन कर रहा है वह कलकल,
डाल उसे हलचल में?
यौवन-शिशु ही मचल रहा है
चंचल-जल-अंचल में।

बँधी-बँधी थी, मुक्ति पा गयी
दृष्टि हरे प्रान्तर में;
अन्तर में एकान्त भाव भर
आता है पल भर में।

उस एकान्त भाव के भी ये
शान्ति-कुंज झुरमुट हैं;
सजल कान्ति के नीलकमल-से
बाँधे सुख-सम्पुट हैं।

अहा! अकृतिम शुद्ध-वायु-गति
गन्धमयी - मदमाती;
नहीं लक्ष्य में, अनुभव में ही
ईश्वर-सी है आती!

मैं तो आज कृतार्थ हो गया,
नयी पुलक यह पाके;
भूमि-भूमि का गुण विशेष है,
देखे कोई आके।

क्या जाने, क्या देख यहाँ पर
यह औत्सुक्य उमड़ता—
मानों अभी किसी झुरमुट से
वह है निकला पड़ता।

सखा साथ में, वेणु हाथ में,
ग्रीवा में वनमाला;
केकि-किरीट, पीट-पट-भूषित,
रज-रूषित लटवाला।

द्विज-गण शान्ति-पाठ करते हैं,
द्रुम कुसुमांजलि धारे;
खड़ी दिग्बधू, लिये हेम-घट,
अपना तन-मन वारे!

हुआ प्रफुल्लित सुख से मानों
दिन भी जाते-जाते;
गायों के काँचल, माँओं के
आँचल उमगे आते।

देखो जिधर उधर ही भूपर
फूल रही हरियाली;
पर, नागर नर छींटेगा ही
यहाँ रुधिर की लाली!

प्रकृति-पुरुष की वत्सलता की
गद्गद नदी बही यह;
नरव्याघ्र की रक्त पिपासा
फिर भी बनी वही वह!

'सिंह कहीं चारा चरते हैं?'
दर्प पाप का कैसा?
जीव, न जाने, मिला तुझे फल
किस कुशाप का ऐसा।

जी सकते हैं देख, सर्प भी,
होकर पवनाहारी!
पर उनमें भी द्वेष-दम्भ है,
विष तेरी बलिहारी।

पशु-पंछी अज्ञानी ठहरे,
लगे, जो लगे करने;
किन्तु ज्ञान पाकर भी उसका
किया निरादर नर ने।

धरती पर जो पैर न धरते,
मिले धूल में वे भी,
उछले बहुत, परन्तु अन्त में
थे अकूल में वे भी।

सौ से सबल, तथापि एक से
तुम भी अबल पड़ोगे;
होगा क्या परिणाम, सोच लो,
यदि तुम यहाँ लड़ोगे।

तुम निर्माण नहीं कर सकते,
फिर क्यों नाश करोगे?
जीने देकर जियो, मार कर,
क्या तुम नहीं मरोगे?

बनो अग्निशर्मा-वर्मा तुम,
सुनो किन्तु अभिमानी,
जो है आग, आग ही है वह,
पानी है सो पानी।

कितना ही उष्णत्व क्यों न दें,
उफना दें हम जल को,
किन्तु बुझा देगा स्वभाव से
शीतल सलिल अनल को।

मार्मिक धर्म समीर-धर्म है,
सभी साँस लें जिसमें;
मृदुता और प्रबलता दोनों
एक साथ हैं इसमें।

किन्तु स्वयं तुम शुद्ध नहीं तो,
कोई धर्म तुम्हारा;
कितना ही प्रबुद्ध हो, कलुषित,
है सारा का सारा।

कंसराज कुछ कहें, प्रथम ही
काँप गये वे भय से;
शिशुओं ने ही उन्हें हराया,
केवल निज संशय से।

वीर-बली थे, तो उन सबको
आप अभय देते वे;
शत्रु एक उनका जो होता
उसे समझ लेते वे।

भागिनेय से अपना मरना,
सत्य उन्होंने माना,
तो फिर सत्य अनृत क्यों होगा,
इसे क्यों नहीं जाना?

किसी दृष्टि से भी न उचित था
बच्चों का वध करना;
वैरी के हाथों मरने से
भला बन्धु से मरना।

क्या कर सका परिश्रम उनका?
कुफल पाप ही उसका;
टल जावे तो मरण नहीं वह,
वरण आप ही उसका।

भावी नहीं, न आवे यदि वह
करने को मन चाहा;
भेजा गया स्वयं यह उलटा
स्वागतार्थ मैं आहा!

पहले ही अनुमान मुझे था,
आज स्वयं देखूँगा;
कैसे कहूँ, देख कर उसको
भाग्य नहीं लेखूँगा?

वारी जाय न जाय भले ही
सारी सृष्टि उसी पर;
लगी सतृष्ण देवकी की वह
कातर दृष्टि उसी पर।

यह मयूर ऊँचा मुख कर के
"कौन, कहाँ" कह बोला;
अरे, बताऊँ मैं क्या तुझको,
नाच उठा तू भोला।

तेरा घनश्याम-धन हरने
पवन-दूत बन आया;
काम क्रूर, अक्रूर नाम है,
वंचक बना बनाया!

हाय! रँभावेंगी कल गायें,
माताएँ रोवेंगी;
वृन्दावन की विपिन-देवियाँ
सुध कर सुध खोवेंगी।

बोल सकेगी बाष्प-वेग-वश
क्या कोई व्रजबाला?
चला जायगा खिझा खिझा कर
उन्हें रिझाने वाला।

कब लौटेगा? कौन कहे यह,
फिर भी यह प्रत्यय है;
उसके लिए नहीं भय कोई,
निश्चय जय ही जय है।

अथवा लौटेगा तो तब वह
जब जाने पावेगा?
अब तक नयनों में था, पर अब
मन में रम जावेगा।

नन्द

नन्द लौट आया मथुरा से,
हे ईश्वर, क्या लेकर?
यह सन्तोष—"देवकी का वह
कोष उसीको देकर।"

नहीं नहीं, दे सका कहाँ यह
लोलुप मन उस धन को?
तब तो तम तकना पड़ता है
तस्कर ज्यों इस जन को!

यह गोकुल का ग्योंड़ा, गाड़ी
खड़ी क्यों रहे, जावे;
मेरी बाट यशोदा की टुक
आशा को अटकावे।

दिन जाने पर भी कुछ क्षण तक
अरुणाभा रहती है;
और एक आश्रय लेने को
यात्रा से कहती है।

तब तक मैं भी तनिक अकेला
रह कर जी भर रो लूँ,
मानस के जल से मुख धो लूँ,
कटि कस प्रस्तुत हो लूँ।

श्याम नहीं तो तनिक श्यामता
सन्ध्या में आ जावे,
ठीक किसी को यह जन, कोई
इसको देख न पावे।

अयि सन्ध्ये, ले जा यह सोना,
तमसा टूट पड़ेगी,
नहीं फिरा वह रत्न, आज तू
कह क्या यहाँ जड़ेगी?

लौटा नहीं सरोज, भृंग तो,
रख फिर भी संपुट तू;
तब तक उसका स्वप्न देख कर
कुमुद, मुदित हो स्फुट तू।

शून्य-गगन, तेरी गोदी को
अभी इन्दु भर देगा;
पर मेरी जीवन-सन्ध्या का
तिमिर कौन हर लेगा?

कौन हूक उठ रही न जाने
यह मेरे गोकुल से,
उतरूँगा क्या पार हाय! मैं
इसी धुवें के पुल से!

आ गोधूलि, तुझे लूँगा मैं
अब भी इन पलकों पर;
किन्तु न बैठ सकेगी अब तू
उड़ कर उन अलकों पर।

तनिक आड़ में हो जाऊँ मैं,
इस झाऊँ में झुक कर,
ताक रहीं बाँ बाँ कर गायें
इधर उधर, रुक रुक कर।

वत्सों के पीने में भी ये
दूध चढ़ा लेती थीं,
और हाय! मेरे मोहन का .
भाजन भर देती थीं।

गयी यशोदा की बेटी तो
क्या उसके विनिमय में?
नन्द आज भी दे सकता है
सब कुछ उसके जय में?

सफल जन्म मेरी बेटी का,
बची विश्व की थाती;
उतरा भार मही माता का,
मरा कंस कुल-घाती।

गोकुल की रक्षा कर उसको
ध्रुव गोलोक मिला है;
धन्य मुझे गद्गद करके ही
उसका शोक मिला है।

रोने लगी देवकी दुखिया
जब वह मुझसे भेटी—
"बेटा कैसे लूँ, लौटाये
बिना तुम्हारी बेटी?"

मैं भी रोने लगा देख कर
उसकी दारुण बाधा—
"शुभे, शान्त हों, ब्रज में बैठी
मेरी बेटी राधा।"

किन्तु वस्तुतः मैं बेटी की
आज बिदा कर आया;
पुत्र-रूप में ही राधा को
यहाँ नन्द ने पाया।

हा! तथापि मुँह दिखलाऊँगा,
कैसे उसे यहाँ मैं?
गया खेल ही बिगड़, खिलौना
लेने गया जहाँ मैं!

भहराती डोलेंगी गायें
बछड़ों से भी बिचकी;
युवक कहाँ उत्साहित होंगे
लेने को अब मिचकी?

आ बैठेंगे वृद्ध पौर में,
बालक नहीं जुड़ेंगे;
उस विस्तृत आँगन के ऊपर
केवल काग उड़ेंगे!

हाय! उलहना लाकर हमसे
अब कोई न लड़ेगा;
मिसरी तो चींटियाँ चुगेंगी,
माखन किन्तु सड़ेगा।

छिपा यशोदा के आँचल में
राधा का मुख होगा;
फिर भी हरि को दुःख न हो कुछ,
हमें यही सुख होगा।

मिलो शावकों से विहंग, उड़
निज निज कोटर जाओ;
मुझसे न कहो—"निशा निकट है,
तुम भी तो घर जाओ।"

यद्यपि मेरा हरि सुख-पूर्वक
बैठा राज-भवन में,
फिर भी मेरे लिए आज क्या
है मेरे गृह-वन में?

हे मधुवन के पवन, न पूछे
कोई मुझसे आकर,
कह दे तू ही आज कृपा कर
सबसे यह जा जा कर–

नहीं किसी का, नहीं किसी का,
वह मेरा, वह मेरा;
केवल गोकुल ही उसका घर,
और जहाँ है, डेरा।

फिर भी मेरा गोकुल, मेरा
वृन्दावन अब ऊना;
मेरा यमुना-तट, वंशीवट,
दूर-निकट सब सूना।

मूक-स्तब्ध सजनता मेरी,
कलकल-विकल विजनता।
एक तीसरा थल होता तो
मेरा रहना बनता।

कहते हैं इसको या उसको
किसी एक को चुन लो;
पर मेरा यह वहीं जहाँ वह,
सभी देख लो–सुन लो।

मेरे आशा-कुंज, न सूखो,
उसे कहाँ लाऊँगा?
उसने मुझसे यही कहा है,
"मैं सत्वर आऊँगा।"

कुब्जा

कंसराज के लिए ले चली
फूल और चन्दन मैं,
पहुँच पार्श्व से बोला पथ में—
"शुभे, नन्दनन्दन मैं।

किसके लिए लिये जाती हो
तुम पूजा की थाली?"
यह कह कर क्या जाने, कैसे
मुसकाया वनमाली।

रवि-शशि लटके रहें शून्य में,
उसमें सार भरा था;
धन्य, धरा ने ही उस धन का
गौरव-भार धरा था।

अथवा अपने पैरों पर ही
खड़ा आप वह नर-वर;
बची रसातल जाने से यह
धरा वही पद धर कर।

कसी क्षीण कटि, पीन वक्ष था,
कच कन्धरा ढँके थे;
स्वर्ण-वर्ण के उत्तरीय में
चित्रित रत्न टँके थे।

दुगुने-से दो भुज विशाल थे
पार्श्व छीलते-छिलते;
गण्ड-द्युति-मण्डल से मण्डित
श्रुति-कुण्डल थे हिलते।

चिबुक देख फिर चरण चूमने
चला चित्त चिर चेरा;
वे दो ओंठ न थे, राधे, था
एक फटा उर तेरा!

फिर भी उसके दन्त-हास में
मोती खो जावेंगे;
उस नासा को निरख कुटिल भी
सीधे हो जावेंगे।

देख लिया मैंने सहस्रदल
ले उस मुख की झाँकी;
वृद्ध न होकर बाल बनी थी
पलट प्रौढ़ता बाँकी!

उन काली आँखों में कैसी
उजली दृष्टि निहारी;
जान पड़ा ब्रज-कुंज-विहारी
मुझको विश्व-विहारी!

श्याम-रूप, हो न हो, राम ही
पुनः आप आया वह;
पर इस कंसपुरी में भी क्यों
नहीं चाप लाया वह?

हृदय सशंक हुआ पर आहा!
वंक भृकुटियाँ तीखी,
निज विलास में विश्व नचाती,
वंशीधर की दीखी।

मेरे मन की मूर्त्ति ढली थी
उसके साँचे में वह;
खेल रहा था नारायण ही
नर के ढाँचे में वह!

मोर-पंख भी मुकुट बना था
उसके अपनाने से;
सिंह पुरुष बन जाय हाय! वह
पीताम्बर पाने से!

पड़ी तरल यमुना तरंगिणी
घनी खड़ी हो जावे,
तो उस अंग-भंगिमा का कुछ
रंग-ढंग वह पावे।

वह सजीव रचना थी युग की
पल में आकर झलकी;
नहीं समाई जड़-जंगम में
छवि उसकी जो छलकी!

काम-रूप धारी वह जलधर
जगमग ज्योतिर्मय था;
घन होकर भी सहृदय था वह;
निर्भय किन्तु सदय था।

ललित-गभीर तदपि चंचल-सा
वह विस्फूर्ति-भरा था;
मूर्ति मन्त भव-भद्र भाद्र-सा
श्यामल हरा हरा था।

राधा ने पहनाया होगा
वह रण-कंकण उसको;
और मिल चुकी थी जय निश्चय
वहीं उसी क्षण उसको।

व्रजरानी के विजयी वर के
धरे चरण ही चेरी;
पर अपने अतिरिक्त भेंट क्या
हो सकती है मेरी?

देखा मैंने, देव आज ही
मेरे आगे आया;
अब तक दानव-पूजन में ही
मैंने जन्म गँवाया।

मैं ऊँची न हो सकी, फिर भी
हिलते हाथ बढ़ाये;
माथे पर चन्दन, चरणों पर
मैंने फूल चढ़ाये।

बायें कर से सिर सँभाल कर
धर दायें से ठोड़ी,
किया मुझे उत्कर्षित उसने,
शक्ति लगा कर थोड़ी।

देख पैर उठते, चरणों से
हँस कर इन्हें दबाया;
मैं उठ गयी और कूबड़ का
मैंने पता न पाया!

चमक गयी बिजली-सी भीतर,
नस-नस चौंक पड़ी थी;
तनी, जन्म की कुब्जा क्षण में
सरला बनी खड़ी थी।

चिबुक हिलाकर छोड़ मुझे फिर
मायावी मुसकाया;
हुआ नया प्रियस्पन्दन उर में,
पलट गयी यह काया।

मैं ही नहीं, सृष्टि ही सारी,
पलट गयी थी पल में;
उतर इन्द्र का नन्दन वन-सा
छाया था भूतल में।

इस भव में रस और भाग था
मेरा भी उस रस में;
छूटे स्रोत, साथ ही शतदल
फूटे इस मानस में।

सत्य हुआ मैं देख रही थी
अनदेखे सपने को;
आत्म-ग्लानि छोड़कर मैंने
देखा तब अपने को।

"अब फिर कभी मिलूँगा" कह कर
हँसता चला गया वह;
ज्यों ज्यों दूर गया, मानस में
धँसता चला गया वह!

धरती ही देखी थी मैंने,
पृष्ठ-भार से झुक कर;
अब ऊँची ग्रीवा कर सीधे
देखा नभ रुक रुक कर।

ओ हो! वही सुनील वर्ण था
उसी मदन-मोहन का;
एक पक्षिणी-तुल्य ठौर ही
बहुत वहाँ इस जन का।

हरा-भरा भूतल भी ऐसा
देखा मैंने कब था;
शस्यश्यामल वर्ण वहाँ भी
उसी श्याम का अब था।

अहा! उसी में एक कुसुम-सा
यह जन भी खिल जावे;
मुझे और कुछ नहीं चाहिए,
बस इतना मिल जावे।

देखा मैंने, रँगा उसी के
रंग में निर्मल जल है;
अनल उसी की आभा धारे,
अनिल गन्ध-गति-बल है।

एक तरंग, एक चिनगारी,
एक साँस मैं उसकी;
बजे वेणु उस नट नागर की,
एक आँस में उसकी।

मेरा तत्व-तत्व तन्मय था,
किसे कंस का भय था?
लौट पड़ी मैं घर वैसी ही,
जन जन को विस्मय था।

किन्तु मुझे निर्जन अभीष्ट था
चिन्तनार्थ कुछ मन के;
अपने को भी देख सकी थी
मैं क्या बिम्बित बन के।

लेने नहीं, राज्य देने ही
वह विक्रान्त चला था;
कंस मरा, पर उग्रसेन का
फिर भी भाग्य भला था।

रोता देख वृद्ध नृप को वह
बोला—"नाना! नाना!"
मिल वसुदेव-देवकी ने भी
भर पाया मनमाना।

आने की न आप कहता तो
कुब्जा क्या राधा थी;
मैं तो चेरी थी, जाने में
मुझे कौन बाधा थी?

किन्तु आज आकुल है वन में
जैसी वह ब्रजरानी;
दासी ने घर बैठे उसकी
मर्म-वेदना जानी।

अथवा एक परस में ही जब
तरस रही मैं इतनी;
होगी विकल न जाने तब वह
सदा-संगिनी कितनी?

होती हाय! आज कुब्जा ही
यदि राधा की दूती;
जाकर शरण इसी मिस तो वे
अरुण चरण तो छूती।

कल्प हुआ यह जिस काया का,
इसे कहाँ ले जाऊँ?
आवे वही, उसे अर्पण कर
परित्राण मैं पाऊँ।

दे न गया वह यह शरीर ही
हाय! शील भी ऐसा;
करते बनता नहीं, चाहती
हूँ, मैं करना जैसा।

आया नहीं विसासी अब भी
बस ये आँसू आये;
अहा! उसी लावण्य-सिन्धु का
रस ये आँसू लाये।

पी पी कर मैं इन्हें, भाग्य को
अब भी कैसे कोसूँ?
पर अजान इस आतुर उर को
कब तक पालूँ-पोसूँ?

आयी रात, हुआ चन्द्रोदय,
मैंने यही विचारा—
वह शशि है, मैं निशि होऊँ या
वह तमिस्र, मैं तारा!

हुआ प्रभात और अरुणोदय,
गूँजी उर की अलिनी;
उसी पूर्व की फटती पौ में,
उसी हंस की नलिनी।

चढ़ी बहुत निज नील गगन में,
मैंने पार न पाया,
ढुलक पड़ी मैं आप ओस-सी
हा! आधार न पाया।

रह सकता है बस यह पानी
उन्हीं नखों पर चढ़ के;
किन्तु पधारे कहाँ चरण वे,
लूँ मैं जिनको बढ़ के।

वह भीतर ही रहा, व्यर्थ ये
द्वार सजाये मैंने।
श्रुति-अतीत वह, क्यों इस तन के
तार बजाये मैंने?

क्यों घृत-दीप जलाये मैंने,
माखन-चोर न आया;
फिर भी अन्तर में तो छाया
वह नव-घन-मन भाया।

स्नेह-हीन दीपक सो जावें,
सजग सजल लोचन तो;
फीके पड़ें सुमन, चिन्ता क्या,
अनुरंजित यह मन तो।

मेरा अतिथि देव आवे तो,
मैं सिर-माथे लूँगी,
उसने मुझको देह दिया, मैं
उसे प्राण भी दूँगी।

धड़क न वक्ष, कक्ष में है वह,
फड़क वाम-भुज मेरे;
मिले मिलन मय अन्त मुझे, तो
सफल सभी रुज मेरे।

रहें भ्रान्तियाँ, रहें श्रान्तियाँ,
रहें क्रान्तियाँ चाहे;
नटवर! तेरा नाट्य-बन्ध निज
सन्धि-शान्ति निर्वाहे।

क्रान्ति हो चुकी, श्रान्ति मेट अब
आ, मैं व्यजन करूँगी;
मोती न्योछावर करके, वे
श्रम-कण बीन धरूँगी।

मेरा ही अधिकार यहाँ, सुन,
राधा रुष्ट न होगी;
दासी को वंचित कर, तेरी
रानी तुष्ट न होगी।

वह ब्रजरानी भी नारी है,
यह सरला भी नारी;
आत्म-समर्पण के दोनों जन
हम समान अधिकारी।

एक पुरुष से योषित्ता ने
सहज किसे न मिलाया;
पर मेरा नारीत्व निहत था,
तूने आप जिलाया।

कूबड़ न था, कुण्डली पकड़े—
जकड़े मुझे पड़ा था;
तूने कौन मन्त्र फूँका, वह
उठ हट दूर खड़ा था।

किन्तु विरह-वृश्चिक ने आकर
अब यह मुझको घेरा;
गुणी-गारुड़िक, दूर खड़ा तू
कौतुक देख न मेरा।

तू न आज भी आवेगा तो
मैं ही कल जाऊँगी;
कुछ न सही तो कुटिल भृकुटि तो
तेरी मैं पाऊँगी।

यही कहेगा न तू—"अधीरे,
निकली तू चेरी ही!"
हाँ हाँ, मैं चेरी, मैं चेरी,
तेरी ही, तेरी ही।

गड़े हुए धन-सा, मन में ही
रक्खूँ क्या मैं तुझको;
तो यह मेरा तन क्यों तूने
दिया बनाकर मुझको?

रोम रोम बस तुझे पुलक-सा
पा कर जड़ रह जावे;
और उन्हीं चरणों में जीवन
स्वेद बना बह जावे।

पत्र पत्र में तेरी आहट
चौंकाती आती है;
किन्तु प्रतीक्षा में ही वेला,
बीत बीत जाती है।

निद्रा तेरा स्वप्न ले गयी,
अरे सत्य, अब आ जा;
जाग रही हूँ स्वागतार्थ मैं,
ओ राजों के राजा!

अहोरात्र के पंख लगाकर
सुध-सी उड़ती हूँ मैं;
तुझसे मिलने को अपने से
आप बिछुड़ती हूँ मैं।

और बड़ा कौतुक तो यह,
यहीं कहीं बैठा है;
ओ कठोर, कह किस कोठे में
तू घुस कर पैठा है?

तेरी व्यथा बिना सुन, मेरी
कथा न पूरी होगी;
तू चाहे जिसका योगी हो,
मेरा क्षणिक वियोगी।

तेरे जन अगणित, परन्तु मैं
एक विजनता तेरी;
बस इतनी ही मति है मेरी,
इतनी हो गति मेरी।

उद्धव

1
(यशोदा के प्रति)

अम्ब यशोदे, रोती है तू?
गर्व क्यों नहीं करती?
भरी भरी फिरती है तेरे
अंचल-धन से धरती।

अब शिशु नहीं, सयाना है वह,
पर तू यह जानें क्या?
आया है वह तेरी माखन-
मिसरी ही खाने क्या?

खेल-खिलौने के दिन उसके
बीत गये वे मैया;
यही भला, निज कार्य करे अब
तेरा कुँवर-कन्हैया।

उसे बाँधना तुझे रुचेगा
क्या अब भी ऊखल से?
काट रहा है वह सुजनों के
भय-बन्धन निज बल से।

उसे डिठौना देने का मन
क्या अब भी है, कह तो?
प्रेत-पिशाच झाड़ने आया
मनुष्यत्व के वह तो!

तेरी गायों को तो कोई
चरा लायगा वन में;
पर उद्दण्ड-द्विपद-षण्डों का
शासक वही भुवन में।

हाँ, वह कोमल है, सचमुच ही
वह कोमल है कितना?
मैं इतना ही कह सकता हूँ,
तेरा मक्खन जितना।

बना उसी से तो उसका तन,
तूने आप बनाया;
तब तो ताप देख अपनों का
पिघल उठा, उठ धाया।

पर अपने मक्खन के बल की
भूल न आप बड़ाई,
भूला नहीं स्वयं वह उसकी
गरिमा, तेरी गाई।

कितने तृणावर्त तिनके-से
यहाँ उसी ने झाड़े;
मैं क्या कहूँ, वहाँ कैसे क्या
मोटे मल्ल पछाड़े!

कहाँ नाग-नग, कहाँ रत्न-सा
छोटा तेरा छौना।
चला कुवलयापीड़ झटकने
नील सरोज सलौना।

काल-फणी निकला परन्तु वह,
जिसने सूँड़ न छोड़ी;
तोड़ उसी का दाँत निठुर ने
क्या गज-मुक्ता फोड़ी!

माँ, तुझको किसकी चिन्ता है,
अच्युत है सुत तेरा;
प्रेम पाप-शंकी हो फिर भी
मन श्रद्धायुत तेरा।

पर सब कुछ प्रत्यक्ष यहाँ तो,
और बड़ा प्रत्यय क्या?
चुटकी में ही उड़ा कंस का
राजरोग, अब भय क्या?

उसे खिलाया और पिलाया,
तूने जितना, जैसा,
गिन सकना भी उसे कठिन है,
भला चुकाना कैसा?

पर संसार-समक्ष उसे क्या
स्वीकृत भी न करे वह?
धनी धनी क्या, यदि अपना धन
केवल गाड़ धरे वह?

तेरे व्रज के रोम रोम में
वह छवि सदा समाई,
अब अपने गोपाल-बाल की
तू कुछ देख कमाई।

कह, यह क्षार-नीर या उसकी
यशस्सुधा चक्खेगी?
अपने दधि के मटकों तक ही
क्या उसको रक्खेगी?

निकला है जिस व्रत को लेकर
माँ तेरा वनमाली,
पूरा किये बिना, घर कैसे
लौटे वह बलशाली?

तेरा रोदन वहाँ गूँज कर
बाधा-विघ्न न डाले,
मंगल मना यहाँ तू, सुख से
स्वकर्तव्य वह पाले।

मैं भविष्य में भी सुनता हूँ
यही टेक मन-भाई—
"दूध-पूत पाया तो तूने,
धन्य यशोदा माई!"

दुखा देवकी को न हाय! तू,
धाय न बन माँ होकर;
तेरा ही पाया है उसने,
अपना फिर फिर खोकर।

हरि जब कारागृह में पहुँचा
तब सुख से या दुख से,
क्षण भर, हाथ बढ़ाकर भी वह,
कह न सकी कुछ मुख से।

बोल सकी तब—"बहिन यशोदे,
यह तेरा - यह तेरा!
मुझसे तो उस भाई ने भी
आज यहाँ मुँह फेरा!"

"वह उस दुखिया को दुलरावे।"
हाँ, यह तेरी वाणी;
अम्ब, यही तो तुझसे सुनने
आया था यह प्राणी।

अक्षत तेरा वृन्दावन का
व्रत गो-सेवा वाला;
जब चाहे तब दूर कहाँ है,
तुझसे तेरा लाला।

किसको तेरे स्निग्ध भाव का
मोहन-भोग न भावे?
नित्य दुग्ध-दधि-मक्खन तेरा
उसे पहुँचता जावे।

अब भी तेरी यमुना उसके
वातायन के नीचे;
विस्मय क्या यदि रत्नाकर भी
उसे भक्ति से खींचे।

रहती हो निश्चिन्त कभी तू
उसे निकटतर पाकर;
किन्तु रहेगी लीन उसी में
अब ध्रुव ध्यान लगाकर।

हुए निकटतम ही तुम मन से,
रहो कहीं भी तन से;
तेरा परमात्मीय तुझी में,
देख आत्म-दर्शन से।

2
(गोपियों के प्रति)

अहा! गोपियों की यह गोष्ठी,
वर्षा की ऊषा-सी;
व्यस्त-ससम्भ्रम उठ दौड़े की
स्खलित ललित भूषा-सी।

श्रम कर जो क्रम खोज रही हो,
उस भ्रमशीला स्मृति-सी;
एक अतर्कित स्वप्न देखकर
चकित चौंकती धृति-सी।

हो होकर भी हुई न पूरी,
ऐसी अभिलाषा-सी;
कुछ अटकी आशा-सी, भटकी
भावुक की भाषा-सी।

सत्य-धर्म-रक्षा हो जिससे,
ऐसी मर्म मृषा-सी;
कलश कूप में, पाश हाथ में,
ऐसी भ्रान्त तृषा-सी!

उस थकान-सी, ठीक मध्य में
जो पथ के आई हो!
कूद गये मृग की हरिणी-सी,
जो न कूद पाई हो!

तिमिर देखती उस यात्रा-सी,
जो सन्ध्या की भूली,
नहीं समाती हुई साँस-सी;
जो असमय उठ फूली।

बालक की फल चेष्टा-सी, जो
पा न सके, पर लपके;
उस जलती भट्ठी-सी जिससे
उड़ उड़ मदिरा टपके!

अवश अचलता-सी, जिससे हो
रस-चंचलता चूती;
कठिन मानकी हठ समाप्ति-सी,
खोज रही जो दूती।

उस उत्कण्ठा-सी, जो क्षण-क्षण
चौंक उठे एणी-सी;
खुलकर भी जो सुलझ न पाई,
उस उलझी वेणी-सी।

बद्ध-वारि-लहरी-सी जिसको
चौमुख वायु विलोड़े,
उस निमग्नता-सी, जो अपना
तल पावे, तब छोड़े!

वृन्दावन की ही झाड़ी-सी,
झंझा की झकझोरी,
जिसका सिद्ध हुआ अन्तर्हित,
सहसा चोरी चोरी।

सुरांगना-सी, तपोभंग की
ठान चली, जो मन में;
किन्तु तपोवन के प्रभाव से
लगी स्वयं साधन में!

तुल्य-दुःख में हत-ईर्ष्या-सी;
विश्व-व्याप्त समता-सी,
जिसको अपना मोह न हो, उस
मूर्त्तिमती ममता-सी।

लिखा गया जिसमें विशेष कुछ,
ऐसी लोहित मसि-सी;
किसी छुरी के क्षुद्र म्यान में
ठूँस दी गयी असि-सी!

सम्पुटिकता होकर भी अलि को
धर न सकी नलिनी-सी;
अथवा शून्य-वृन्त पर उड़ कर
मँडराई अलिनी-सी।

पिक-रव सुनने को उत्कर्णा
मधुपर्णा लतिका-सी,
प्रोषितपतिका पूर्वस्मृति में
रत आगतपतिका-सी!

जो सबको देखे, पर निज को
भूल जाय उस मति-सी;
अपने परमात्मा से बिछुड़े
जीवात्मा की गति-सी!

चन्द्रोदय की बाट जोहती
तिमिर - तार - माला - सी;
एक एक ब्रज-बाला बैठी
जागरूक ज्वाला-सी!

अहो प्रीति की मूर्ति, जगत में
जीवन धन्य तुम्हारा;
कर न सका अनुसरण कठिनतम
कोई अन्य तुम्हारा।

चपल इन्द्रियों को भी तुमने
तन्मय बना दिया है;
पावन हुआ पाप भी जिसमें,
वह पथ जना दिया है।

धन्य दूरता ही प्रिय की, जो
और निकट ले आवे;
चर्म-चक्षुओं के बदले यह
आत्मा उसको पावे।

प्राप्य अन्ततः वह परमात्मा
आत्मा ही के द्वारा;
मिथ्या माया का प्रपंच है
दृश्यमान यह सारा।

एक एक तुम सब राधा हो,
कहाँ तुम्हारी राधा?
नहीं दीखती मुझे यहाँ वह,
हुई कौन-सी बाधा?

सच कहता हूँ, मैंने अपना
राम तुम्हीं में पाया,
किन्तु तुम्हारा कृष्ण कहाँ, मैं
यही पूछने आया।

गोपी

राधा का प्रणाम मुझसे लो,
श्याम-सखे, तुम ज्ञानी;
ज्ञान भूल, बन बैठा उसका
रोम-रोम ध्रुव-ध्यानी।

न तो आज कुछ कहती है वह
और न कुछ सुनती है;
अन्तर्यामी ही यह जानें,
क्या गुनती-बुनती है।

कर सकती तो करती तुमसे
प्रश्न आप वह ऐसे—
"सखे, लौट आये गोकुल से?
कहो, राधिका कैसे?"

राधा हरि बन गयी, हाय! यदि
हरि राधा बन पाते,
तो उद्धव, मधु वन से उलटे
तुम मधुपुर ही जाते।

अभी विलोक एक अलि उड़ता,
उसने चौंक कहा था—
"सखि, वह आया, इस कलिका में
क्या कुछ शेष रहा था?"

पर तत्क्षण ही गरज उठी वह,
भौंह चढ़ाकर बाँकी–
"सावधान अलि! हट कर लेना
तू प्यारी की झाँकी!"

आत्मज्ञान-हीन वह मुग्धा,
वही ज्ञान तुम लाये;
धन्यवाद है, बड़ी कृपा की,
कष्ट उठा कर आये।

पर वह भूली रहे आपको,
उसको सुध न दिलाना,
होगा कठिन अन्यथा उसका
जीना और जिलाना!

डूबी-सी वह बीच-बीच में
पलक खोलकर आधे,
चिल्ला उठती है विलोल-सी
बोल–"राधिके, राधे!"

ज्ञान-योग से हमें हमारा
यही वियोग भला है,
जिसमें आकृति, प्रकृति, रूप, गुण
नाट्य, कवित्व, कला है।

राम-राम! मिथ्या माया के
भाव कहाँ से जागे?
सच्चे ज्ञान, अनन्त ब्रह्म के
जीव आप तुम आगे!

विद्यमान सब विगत क्यों न हो,
किन्तु समागत भावी;
मिथ्या कैसे है माया भी,
जब तक वह मायावी?

हममें-तुममें एक ब्रह्म, पर
वह कैसा नटखट है,
बोल दो घटों में दो बातें,
करा रहा खटपट है!

उसको यही प्रपंच रुचे तो
हमें कौन-सी व्रीड़ा?
एक मात्र यदि वही रहे तो
चले कहाँ से क्रीड़ा?

होगा निर्गुण, निराकार वह
छली तुम्हारे लेखे;
हमसे पूछो तुम, उसके गुन-
रूप हमारे देखे।

अन्तर्दृष्टि मिले तो हम भी
शून्य देख लें अब के;
पर जब तक हैं, कहो क्या करें,
चर्म-चक्षु हम सबके?

कहाँ हमारा कृष्ण, हाय! हम
यह क्या तुम्हें बतावें;
ठौर नहीं दिखलाई पड़ता,
उसको जहाँ जतावें।

अब तक यहाँ ध्यान में तो था
वह मोहन मन-भाया;
किन्तु आ अड़ी आज बीच में
कूद ज्ञान की माया!

चाहे क्या राधा वियोगिनी,
स्वयं योग लाये तुम;
आहा! क्या ज्ञानाग्नि-रूप में
भाग्य-भोग लाये तुम!

दृश्यमान का भस्म लेप कर
फिरे योगिनी वन में;
उसका योगिराज, वह राजे
मथुरा-राज-भवन में!

क्या जानें, ज्ञानी ने उसका
ज्ञान कहाँ, कब सीखा;
ज्ञान और अज्ञान हमें तो
यहाँ एक-सा दीखा।

देख न पावें आप आपको,
ये आँखें तो भय क्या?
सबमें उस अपने को देखें,
तब भी कुछ संशय क्या?

गायें यहाँ घेरनी पड़ती,
नांच नाचना पड़ता;
वह रस-गोरस कभी चुराना,
कभी जाचना पड़ता।

राजनीति का खेल वहाँ है
सूक्ष्म-बुद्धि पर सारा;
निराकार-सा हुआ ठीक ही
वह साकार हमारा!

आते-जाते प्रति दिन वन से
घर, फिर घर से वन को;
वह बढ़ गया और कुछ उस दिन
नगर-पवन-सेवन को!

यही बहुत हम ग्रामीणों को
जो न वहाँ वह भूला;
किंवा संग वहाँ भी थी यह
कालिन्दी कल-कूला।

सचमुच ही हम देख रही थीं
जगते-जगते सपना;
जहाँ रहे बस सुखी रहे वह,
दुःख हमारा अपना।

यौवन-सा शैशव था उसका,
यौवन का क्या कहना?
कुब्जा से विनती कर देना—
"उसे देखती रहना!"

कृपया वचन न मन में रखना
तुम अन्यान्य हमारे;
प्रिय के बन्धु, अतिथि हो उद्धव,
तुम सम्मान्य हमारे।

विवशों का मन, वाणी को भी
व्याकुल कर देता है;
आर्त्तों का आक्रोश ईश भी
सुन कर सह लेता है।

ज्ञानी हो तुम, किन्तु भाग्य तो
अपना अपना होता;
वक्ता भी क्या करे, न पावे
यदि अधिकारी श्रोता?

हम अपने को जान न पाईं,
उसको क्या जानेंगी;
मन की बात मानती आयीं,
मन की ही मानेंगी।

निर्गुण निपट निरीह आप हम,
सभी रूप गुण भागे;
निराकार ही निराकार है
आज हमारे आगे!

राधा के अनुरूप जोग की
कोई जुगत जुगाते;
उद्धव, हाय! राजहंसी को
तुम हीरे न चुगाते।

क्या समझाते हो तुम हमको,
वह अरूप है, ओहो!
गोचारी गोपाल हमारा,
रहे अगोचर, जो हो।

हमें मोह ही सही, किन्तु वह
उसी मनोमोहन का;
काम, किन्तु वह उसी श्याम का,
लोभ उसी जन-धन का।

ज्ञानयोग लेकर सुषुप्ति ही
तुम न सिखाने आये?
जाग्रत को समाधि-निद्रा का
स्वप्न दिखाने आये!

नाम मात्र का ब्रह्म तुम्हारा,
रहे तुम्हें फलदायक;
उद्धव, नहीं निरीह हमारा
नटवर - नागर - नायक।

निज विराट को छोड़, सूक्ष्म से
कौन यहाँ सिर मारे?
धार सके उसको जो जितना,
जी भर भर कर धारे।

वे अघ-वक सब कहाँ गये अब,
अरे, एक तो आवे;
देखें हमको छोड़ हमारा
छली कहाँ फिर जावे?

अन्तवन्त हम हन्त! कहाँ से
वह अनन्तता लावें;
इस मृण्मय में ही निज चिन्मय
पावें तो हम पावें।

सिमिट एक सीमा में, मानों
अपने में न समाता,
मिला हमें ऐसे वह जैसे
जोड़ हमीं से नाता!

क्या बतलावें, वह वंशीधर
कैसा आया हममें?
ताल न आया होगा ऐसा
कभी किसी की सम में।

जीवन में यौवन-सा आया,
यौवन में मधु-मद-सा।
उस मद में भी, छोड़ परम पद,
आया वह गद्‌गद-सा।

वृन्दावन में नव मधु आया,
मधु में मन्मथ आया;
उसमें तन, तन में मन, मन में
एक मनोरथ आया।

उसमें आकर्षण, हाँ, राधा
आकर्षण में आई;
राधा में माधव, माधव में
राधा-मूर्ति समाई!

यही सृष्टि की तथा प्रलय की
उद्धव, कथा हमारी,
पर कितना आनन्द हमारा!
कितनी व्यथा हमारी!

कहो, इसे हम किसे जनावें,
कौन, कहाँ जानेगा;
कौन भूल कर आप आपको,
पर को पहचानेगा?

नयी अरुणिमा जगी अनल में,
नवलोज्वलता जल में;
नभ में नव्यता नीलिमा, नूतन
हरियाली भूतल में।

नया रंग आया समीर में,
नया गन्ध-गुण छाया;
प्राण-रूप पाँचों तत्त्वों में
वह पीताम्बर आया।

कोटि कमल फूटे, कमलों पर
आ आकर अलि टूटे;
चित्रपतंग विचित्र पटों की
प्रतिकृति लेने छूटे;

पात-पात में फूल और थे
डाल-डाल में झूले;
वन की रँग-रलियों में हम सब
घर की गलियाँ भूले!

नयी तरंगें थीं यमुना में,
नयी उमंगें ब्रज में;
तीन लोक-से दीख रहे थे
लोट-पोट इस रज में।

ऊपर घटा घिरी थी, नीचे
पुलक कदम्ब खिले थे;
झूम-झूम रस की रिम-झिम में
दोनों हिले-मिले थे!

मद का कहो, अँधेरा-सा ही
आया श्याम सही था;
राधा का छिप गया सभी कुछ,
वह थी और वही था!

किन्तु गया उजियाले-सा वह,
उलटा हुआ यहाँ है;
देश-काल सब अड़े खड़े हैं,
राधा किन्तु कहाँ है?

आँख-मिचौनी में वह भागा,
हमने पकड़ न पाया;
देर हुई तो चातक तक ने
रह रह रोर मचाया।

हँसा किन्तु भेदी पिक हा हा,
हू हू कर इतराया;
तब केकी ने नाच निकट ही
कृपया पता बताया!

उद्धव, वे दिन भूलेंगे क्या,
तुम्हीं बता दो, कैसे?
संकट भी जब हुए हमारे
क्रीड़ा - कौतुक जैसे!

चन्द्र हमारे हाथ, राहु भी
बीच-बीच में झपटे;
पर रस-पिच्छल था यह भूतल,
अरि औंधे मुँह रपटे।

उद्धव, अब आये इस वन में,
सूखा जब सोता है,
सुनो, वही कोकिल अब कैसा
ऊ ऊ कर रोता है।

रह रह एक हूक उठती है,
हृदय टूक होता है;
समा सकी वह मूर्ति न इसमें,
भग्न धैर्य खोता है।

मृग, मृगियाँ, मृग-शावक, साधो,
अब भी यहाँ मिलेंगे;
पर उस यूथप-कृष्णसार के
दर्शन कहाँ मिलेंगे?

सुनकर उसका शृंग-भंग-रव
कौन न सुध-बुध भूला?—
झड़ पाया न फूल भी, जड़-सा
था फूला का फूला!

आना था तो तब आते तुम,
जब यमुना लहराती;
अब तो भहराती जाती है,
देखो यह हहराती!

उड़ती है बस धूल आज तो,
कौन करे रस-दोहन,
आकर एक अलभ्य लाभ-सा,
गया भरम-सा मोहन!

सचमुच ही क्या स्वप्न मात्र था,
जो हमने देखा, वह?
किस समाधि, किस नियम और किस
शम-दम ने देखा वह?

उसे महानिद्रा लेकर भी
एक बार फिर देखें,
अन्त बने या बिगड़े तब भी
हम भर पाया लेखें।

उद्धव, कहो नहीं लौटा क्यों
हाय! हमारा राजा?
बजा यहाँ उसके विरुद्ध था
क्या विप्लव का बाजा?

सिर-माथे ही उस मनोज्ञ को
हमने यहाँ लिया था;
लोक और परलोक, सभी कुछ
अपना सौंप दिया था।

उसका सगुन साधने को हम
शिरोभार सहती थीं।
धरे भरे घट पथ में कब तक
नित्य खड़ी रहती थीं।

कर देना कैसा, अन्तर तक
हमने उसे दिया है;
नित्य नया रस-गोरस लेकर
उसको भेट किया है।

गोवर्द्धन-गढ़ खड़ा आज भी,
जो न इन्द्र से टूटा;
फिर भी चला गया वह गढ़पति,
भाग्य हमारा फूटा।

अरे विहंग, लौट आ, तेरा
नीड़ रहा इस वन में;
छोड़ उच्च पद की उड़ान वह,
क्या है शून्य गगन में?

सदा सजग था वह, सारा व्रज
सुख-निद्रा पाता था;
आता तो ऊपर का ऊपर
संकट कट जाता था।

मन चाहा सब मिल जाता था,
पथ में हमें पड़ा-सा;
गये हमारे वे दिन, अब तो
सम्मुख काल खड़ा-सा!

मूर्च्छित जैसे कालिन्दी के
अब ये कूल पड़े हैं;
डूब जायँ कब, देखो, तट के
विटपी झूल पड़े हैं।

किधर जायँ, पग धरें कहाँ हम,
सीधे शूल पड़े हैं;
अब भी कुंजों में, क्रीड़ा के
सूखे फूल पड़े हैं!

अब प्रभात में ही दो पहरी
यहाँ दृष्टि दहती है;
अपनी ओर निहार आप ही
सृष्टि सन्न रहती है!

सर-सर कर खर-वायु इधर से
उधर निकल जाता है;
पत्र-पत्र मर्मर करता है,
मरण नहीं आता है!

अब जो हरियाली है सो सब
आशा के कारण है;
कुसुमितता, वह पूर्वस्मृति की
किये पुलक धारण है।

वह आता है, यही सोचकर
आ जाते हैं फल भी;
ईश्वर जानें, अब क्या होगा,
भारी है पल-पल भी।

आता था प्रति दिन वह वन से,
संग-संग दल-बल के;
सीधा मानस में जाता था
राजहंस-सा चल के।

हलके हलके छलके छलके?
श्रम-जल के कण झलके;
उनके लिए न रहते किसके
प्यासे लोचन ललके?

आया था उद्धव, अबीरपन
आप यहाँ की रज में;
वह रँग-रस, बस अब होली ही
धधक रही है व्रज में।

तारा-मण्डल घूमा करता
संग रास-मण्डल के।
सबके पार्श्व-तरंग साक्षि हैं
उसके झष-गति-बल के!

सब कुछ रहे, नहीं वह दीपक,
जो सब कुछ दिखलाता;
अन्धकार वह वस्तु, हार भी
जहाँ साँप बन जाता।

आते हैं सन्देश आज भी
अवसर के दूतों के;
उस अवधूत बिना हम पाले
पड़ों महा-भूतों के!

योग नहीं, यह रोग-भोग है,
हमें भोगना होगा;
यह विष भला कौन भागेगा;
वह रस हमने भोगा।

रहे चेतना-सी बस उसकी
मर्म-वेदना हममें,
करती चले उजाला उर की
ज्वाला इस दुर्गम में।

वेद-मार्गियों में आ पहुँचा,
यह निर्वेद कहाँ से?
लौटा ले जाओ हे उद्धव,
लाये इसे जहाँ से।

हम सौ वर्ष जियेंगी, अपनी
आशा लेकर उर में;
वह प्रसन्नता से प्रमोदरत
रहे प्रतिष्ठित पुर में।

हो या न हो सुनो हे साधो,
योगक्षेम हमारा;
बना रहे उस निर्मोही पर,
है जो प्रेम हमारा।

लाख ठगावें, किन्तु सरलता
रहे साख-सी हममें,
लाख ठगें, पर कुटिल कुटिल ही,
रहें न केशव भ्रम में।

जिये चातकी मेघ-वृष्टि से,
शुक्ति स्वाति-रस-सानी;
एक प्रीति की लता चाहती
दो आँखों का पानी!

आशा फूल, निराशा फल है,
इतनी मूल कहानी,
फिर भी हा! इस कृष्ण-हृदय की
वही राधिका रानी!

हर ले कोई राधा का धन,
पर वह भाग उसी का;
कृष्ण उसी का केश-पक्ष है,
सेंदुर राग उसी का!

जिसे मयंक-तुल्य सिर माथे
लिया मयंक-मुखी ने;
भेजी आज भभूति यहाँ उस
रंगी-राज-सुखी ने!

हा! कैसे विश्वास करें हम
उसकी इन घातों का?
अविश्वास किस भाँति करें हा!
उद्धव की बातों का?

माधव भी सच्चे हैं सखियो,
उद्धव भी सच्चे हैं;
हाय! हमारे आँख-कान ही
झूठे हैं, कच्चे हैं!

योग-वियोग हो चुके उद्धव,
चलें सन्धि-विग्रह अब
रस की लूट हुई मनमानी,
पलें नियम-निग्रह अब।

मुरली तो बज चुकी बहुत, अब,
शंख फुँकेंगे सीधे,
दूर मयूर, पलेंगे रण में
गीध गुणों के गीधे!

राधा जब तक है अमानिनी,
करें कृष्ण मनमानी;
उसमें अहम्भाव तो आवे
भरें न आकर पानी!

चरणों में न पड़ें तो कहना
मुकुट - रत्न - मालाएँ;
एक यही आशा लेकर हैं
बैठी व्रजबालाएँ।

मथुरा क्या, आसिन्धु धरा की
धूल छान डालें वे;
राधा-सा जन-रत्न कहीं भी,
जब जानें, पा लें वे।

सौ चक्कर काटेंगे आकर,
उतरेगी तब त्योरी;
जीती रहे यहाँ ज्यों त्यों कर
केवल कीर्ति-किशोरी।

हम राधा-मुख देख, श्याम का
दर्शन पा जाती हैं;
किन्तु श्याम के मन में क्या है,
नहीं जान पाती हैं।

राधा स्वयं यही कहती है—
"उसे जगत की पीड़ा;
छूट गयी जिसमें पड़ कर हा!
व्रज की-सी वह क्रीड़ा।

सुख की ही संगिनी रही मैं
अपने उस प्रियतम की;
व्यथा विश्व-विषयक न तनिक भी
बटा सकी निर्मम की।

उलटा अपना दुःख लोक को
मैंने दिया सदा को,
उस भावुक का रस जितना था,
जूठा किया सदा को!"

यह क्या कहते हो तुम उद्धव,
उसकी पद-रज लोगे?
उसे प्रणाम करोगे, तो फिर
आशिष किसको दोगे?

क्षमा करो चापल्य हमारा,
यही बहुत हम मानें;
चलो, करा दूँ दर्शन तुमको,
पर वह श्याम न जानें!

लो, वह आप आ रही देखो,
'सखी, सखी,' चिल्लाती,
पर 'उद्धव, उद्धव,' की ध्वनि भी
है यह कैसी आती?

यह क्या, यह क्या, भ्रम या विभ्रम?
दर्शन नहीं अधूरे;
एक मूर्त्ति, आधे में राधा,
आधे में हरि पूरे!

द्वापर

(द्वारकाधीश)

सुदामा

अरी, राम कह, वन-सा यह घर
छोड़ कहाँ मैं जाऊँ?
उस आनन्दकन्द को कैसे
तेरी व्यथा सुनाऊँ?

जगती में रह कर जगती की
बाधा से डरती है?
करनी तो अपनी है, धरनी,
असन्तोष करती है?

आने-जाने वाली बातें
आती हैं—जाती हैं,
तू अलिप्त रह उनसे, पर से
पर की वे थाती हैं।

जिनके बाहर के सुख-वैभव
हैं तेरे मनमानें,
डाह न कर उन पर, भीतर वे
कैसे हैं, क्या जानें!

क्या धनियों के यहाँ दूसरी
कुसुम-कली खिलती है?
वही चाँदनी वही धूप क्या
मुझे नहीं मिलती है?

मेरे लिए कौन-सा नभ का
रत्न नहीं बिखरा है?
एक वृष्टि में ही हम सबका
देह-गेह निखरा है।

क्या धनियों के लिए दूसरी
धरती की हरियाली?
या गिरि-वन, निर्झर-नदियों की
उनकी छटा निराली?

शीतल-मन्द-सुगन्ध-वायु क्या
यहाँ नहीं बहता है?
केवल वातावरण हमारा
भिन्न भिन्न रहता है।

फिर भी एक पवन में दोनों
आश्वासी जीते हैं,
शुभे, हमारे ही घट का वे
शीतल जल पीते हैं।

धनी स्वादु से, दीन क्षुधा से
जो कुछ भी खाते हैं,
किन्तु अन्त में तृप्ति एक ही
वे दोनों पाते हैं।

आँगन लीप देहली की जब
पूजा करने आती,
जल, अक्षत, या फूल चढ़ा कर
गुन गुन कर कुछ गाती।

मत्था टेक अन्त में जब तू
मग्न वहाँ हो जाती,
तब न समाकर ऋद्धि जगत में
कहाँ ठौर है पाती?

आग्रह छोड़ वहाँ जाने का,
वह है यहीं, हृदय में,
विघ्न बनूँ कैसे मैं जाकर
उसके लीलालय में?

अपनी ही चिन्ताओं से तू
चैन नहीं लेती है।
जिस पर है भू-भार उसी के
घर धरना देती है?

अपने लिये नहीं जो अधुना
वही चाहिए तुझको,
होता तो मिलता, होगा तो
आप मिलेगा मुझको।

जिसे किसी ने कभी न चाहा,
वह तूने पाया है,
अरी, विपत्ति न कह, यह प्रभु की
ममता है, माया है।

वह दुख मेरे सिर-माथे है,
यह अभाव मन-भाया,
कृपया प्रभु की ओर मुझे जो,
ले जाने को आया।

ईर्ष्या-लोभ-मुक्त होता यदि,
मन यह तेरा मानी,
तो दारिद्र्य-मूर्ति, मैं तुझ पर
आज वारता रानी।

उसके घर के सभी भिखारी?
यह सच है तो जाऊँ,
पर क्या माँग तुच्छ विषयों की
भिक्षा, उसे लजाऊँ?

प्रभु की दया-भागिनी है यह
दरिद्रता ही मेरी।
यह भी रही न हाय कहीं तो,
फिर सब ओर अँधेरी।

विभव-शालिनी इस वसुधा पर
क्या अभाव है धन का,
पाया परम्परागत मैंने
दुर्लभ-साधन मन का।

मैं उस कुल का हूँ, विश्रुत है
त्याग और तप जिसका,
मुझको न हो, किन्तु तुझको भी
गर्व नहीं क्या इसका?

तू तो कोई राज-सुता है
ब्राह्मण के घर आई,
हाय बड़ाई है जो मेरी,
तुझको वही न भाई।

पर मानिनी, क्यों भिक्षा का धन
तुझको नहीं अखरता?
क्षात्र दर्प तो ईश्वर से भी
नहीं याचना करता!

अपना राजस खो बैठी है
तू मेरे घर आकर,
क्या निज सत्व मुझे भी खोना
होगा तुझको पाकर?

वास-वसन, आसन-वासन सब
बदल जायँगे अब ये,
बदले जावेंगे क्या तेरे
पति-दैवत भी तब ये?

हँस कर 'हाँ' कहती है यह तू,
रिस से मौन न रह कर,
जो यह कर सकती है वह है
रह सकती सब सह कर।

तुझसे भी निश्चिन्त हुआ मैं,
अब चाहे जो कह तू,
जैसा चलता है, चलने दे,
सुखी सर्वदा रह तू।

तुझको तो तब भी कुलबधुएँ,
सीधे दे जाती हैं,
मुनि-बालाएँ कन्द-मूल-फल
जब वन में लाती हैं।

वहाँ तपस्वी हैं ऐसे भी,
राज्य छोड़ जो आये,
किन्तु स्वयं राजा भी जिनके
याचक बने बनाये!

नहीं चाहता मैं वह गौरव,
भार सँभालूँ अपना,
पर तू जीती और जागती
देख रही है सपना।

भोगी हो तेरा यह योगी?
अरे, रुष्ट अब होगी?
उद्योगी? अहा! उद्योगी,
कौड़ी का उद्योगी!

नित्य-नित्य लेने की लज्जा,
और न दे पाने की,
ठीक, इसी से एक बार ही,
इच्छा पा जाने की!

किन्तु बता तो दानिनि, मानिनि,
लाज जिसे लेने में,
किस मुँह से तू दर्प करेगी
वही द्रव्य देने में?

लेता हूँ कुछ से मैं अपने
असन-वसन की भिक्षा,
देता हूँ कुछ को मैं उनके
धर्म-कर्म की शिक्षा।

है आदान-प्रदान यही तो
दोनों को हितकारी,
बटे हुए हैं कर्म हमारे,
पड़े न जिसमें भारी।

अपने लिए नहीं, तू मेरे
लिए व्यथा पाती है,
इसीलिए तेरा रोना सुन
मुझे हँसी आती है।

पगली, कभी मुखापेक्षी है
सच्चा सुख यदि धन का,
तो इससे अपमान बड़ा क्या
होगा जन जीवन का?

गेह बड़ा हो किन्तु देह तो
यही रहेगी तेरी,
छप्पन भोग भोग कर भी क्या
भूख भगेगी मेरी?

देता है मिट्टी का घट ही
मुझको ठण्डा पानी,
पर सोने का पात्र चाहती,
तू दरिद्र की रानी!

सोना पाकर भी क्या सुख से
तू सोने पावेगी?
बढ़ती हुई लालसा तुझको
कहाँ न ले जावेगी!

काम, क्रोध, मद, मोह समय पर,
लोभ सदैव सभी को?
कर्मों के अनुसार किन्तु है
देता दैव सभी को।

तू ही कह, तेरा या मेरा
कौन कर्म है छोटा?
कर्म सभी का खरा, भले ही,
कोई कर्मी खोटा।

तप ही परम धर्म है अपना,
त्याग मर्म है जिसका,
मरना भी अच्छा स्वधर्म में,
कहना ही क्या इसका?

जो जिसको उपलब्ध उसी में
असन्तोष है उसको,
राजा भी है रंक यहाँ, पर
कौन दोष है उसको?

ऐहिक उन्नति के अधिकारी
गुण ही इसको मानें,
विष भी अमृत बना बैठा है,
अपने एक ठिकाने!

चल, तू कितनी दूर चलेगी,
रुद्ध कौन पथ तेरा?
अरी, मनोरथ नहीं रुकेगा,
टूटेगा रथ तेरा।

पर मेरी यात्रा मेरे ही
पैरों पूरी होगी,
उतना ही आकर्षण होगा,
जितनी दूरी होगी!

डाल न और मुझे माया में,
तू ही कम क्या जाया?
ज्यों ज्यों सुख पावेगी त्यों-त्यों
अलसावेगी काया।

खाकर मरने से तो भूखों
मरना ही अच्छा है,
कभी कभी उपवास किसी मिष
करना ही अच्छा है।

अन्न-वस्त्र क्या, धरा-धाम क्या,
यदि हम समधिक लेंगे,
तो औरों के लिए उन्हें हम
निश्चय कम कर देंगे।

हुआ व्यर्थ ही ब्राह्मण मैं यदि
वह स्वार्थी बन जाऊँ,
सब जिसमें कुछ अधिक पा सके,
अल्प मात्र मैं पाऊँ।

नहीं समझती है तू मेरी,
तेरी समझूँ कैसे?
किन्तु चला तू गृहस्वामिनी,
मुझको चाहे जैसे।

जाऊँगा क्यों नहीं, इसी मिष
उसे देख आऊँगा,
पावे और न पावे तू, पर
मैं अभीष्ट पाऊँगा।

किन्तु पहुँचने देगा उस तक
मुझे कौन अब, कह री!
लिये भयानक दण्ड हाथ में
पद-पद पर हैं प्रहरी।

उसका सखा आज, तू ही कह,
मुझे कौन मानेगा?
ढीठ नहीं तो पूरा पागल
सारा जग जानेगा।

आज द्वारकाधीश बना है
मेरा व्रजवनचारी
काली कमली छोड़ चुका है,
वह पीताम्वरधारी।

मोर मुकुट वाले के माथे
रत्न किरीट खिला है,
गुंजा के बदले गज मुक्ता,
यों सब उसे मिला है।

जो कदम्ब के तले भीगता,
प्रासादों में बैठा,
जो गोपों के संग विचरता,
परिषद में है पैठा।

जो वत्सों के संग खेलता,
उद्धव का है संगी,
छजते हैं सब वेश उसे, वह
बहु-रूपी, बहु-रंगी!

तनिक छाँछ में जिसे गोपियाँ
नाच नचाया करतीं,
राजनीतियाँ आ उसके घर
अब हैं पानी भरतीं।

मुरली नहीं, आज है शासन-
चक्र हाथ में उसके,
तू ही बता निभूँगा कैसे
वहाँ साथ में उसके?

चिन्ता न कर, कहीं भी हो वह,
पर वह वही वही है,
बाहर तेज, किन्तु भीतर तो
करुणा उमड़ रही है।

ऊपर विद्युज्योति जागती,
आडम्बर भी भारी,
किन्तु सजल निज घनश्याम की
बार बार बलिहारी!

ओ यमुने, भूला क्या तुझको
वह सागरतटगामी?
रहा कौन तेरे दह में अब
नाग निरंकुश नामी?

उसे नाथ कर सबको उसने
किया सनाथ सहज में,
बचा कौन-सा कण्टक, कह अब,
क्या करता वह व्रज में?

किन्तु मिलूँगा कैसे उससे
रिक्तपाणि, कल्याणी,
दे न सकेगी शुभाशीष भी
मेरी गद्गद वाणी।

तदपि जानता है वह जी की,
बहुत चार चावल ही;
मेरी भेट अल्प क्या उसको,
पत्र - पुष्प - फल - जल ही?

❑ ❑ ❑







"प्रेमचन्द जी ने कहा कि जैनेन्द्र, मुझे एक बड़ा अचरज है। मैथिलीशरण और सियाराम शरण दोनों भाइयों को देखकर मैं हैरत में रह जाता हूँ। लक्ष्मण भी क्या रामचन्द्रजी के प्रति ऐसे होंगे?जैनेन्द्र, दो भाई ऐसे अभिन्न कैसे हो सकते हैं?मेरी तो समझ में नहीं आता। कहीं मैंने उनमें भेद नहीं देखा।"

—**जैनेन्द्र कुमार**, 'ये और वे'

मैथिलीशरण गुप्त

खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण में अपूर्व योगदान। 'भारत भारती' के प्रकाशन से राष्ट्रीयता की भावना को आधार बना दिया। जनता से 'राष्ट्रकवि' का विरुद नाम के साथ जुड़ गया। सर्वप्रथम महात्मा गांधी ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' नाम से सम्बोधित किया। सन् 1941 में व्यक्तिगत सत्याग्रह के अधीन जेल गए। स्वाधीन भारत की संसद में आरम्भ से ही मनोनीत सदस्य। 'साहित्य वाचस्पति' और 'डी.लिट्.' (आगरा विश्वविद्यालय, 1948) की मानद उपाधियों से सम्मानित। पद्मविभूषण 1954। [illegible] अग्रणी। भारतीय संस्कृति तथा आधुनिक स्वाधीनता संग्राम की अभिव्यक्ति देनेवाले लोक कवि।

संपादक परिचय

कृष्णदत्त पालीवाल

जन्म : 1 मार्च, 1943, सिकंदरपुर, जिला फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश।

सम्प्रति : दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष। जापान के तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज में विज़िटिंग प्रोफेसर रहे। पत्रकारिता में निरन्तर सक्रिय।

पुरस्कार/सम्मान : हिन्दी अकादमी पुरस्कार 1986। दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन सम्मान 1984। तोक्यो विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय, जापान द्वारा प्रशस्ति 2002। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का राममनोहर लोहिया अतिविशिष्ट सम्मान 2005। सुब्रह्मण्यम भारती सम्मान 2005—केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा। साहित्यकार सम्मान 2006-2007, हिंदी अकादमी, दिल्ली। हिंदी भाषा एवं साहित्य में बहुमूल्य योगदान के लिए विश्व हिंदी सम्मान 2007—आठवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन, न्यूयॉर्क, अमेरिका।